Chapter 3

तृतीय अध्याय

सितार के घराने

तृतीय अध्याय

" सितार के घराने "

कोई भी शैली, चाहे वह गायन की हो अथवा वादन की, अपनी प्रारंभिक स्थिति में कुछ संगीतज्ञों द्वारा स्वेच्छा से विकसित की जाती है। जब बाद की पीढ़ियों द्वारा उस विकसित शैली का अनुकरण किया जाता है, तब वह `घराने` का रूप ग्रहण करती है। शास्त्रीय संगीत की विकास-परम्परा में गुरु-शिष्य परम्परा का अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान रहा है। प्रतिभाशाली गुरु - शिष्य का अन्योन्याश्रय ही घराने के उद्भव तथा विकास का प्रमुख कारण रहा है। घराना एक विशिष्ट शैली का परिचायक होता है। संगीत के क्षेत्र में जिस अद्वितीय प्रतिभा-संपन्न कलाकार द्वारा शैली या रीति विशेष का प्रवर्तन होता है, वही इसका संस्थापक माना जाता है और उसी के नाम अथवा निवास-स्थान से घराने का नाम-करण होता है। वादकों की नवनवोन्मेषशालिनी प्रतिभा के कारण विगत दो शतकों में `सितार वादन` के क्षेत्र में पर्याप्त परिष्कार हुआ है और इसके फलस्वरूप `सितार वादन` के विभिन्न घराने बने हैं।

विभिन्न संगीतशास्त्रियों ने `घराने` को भिन्न-भिन्न प्रकार से परिभाषित किया है, जिनमें से कोई भी परिभाषा वादन के संदर्भ में पूर्णत: लागू नहीं है। कुछ संगीतशास्त्रियों की परिभाषाएं निम्न प्रकार हैं :--

" घराने का पद प्राप्त करने के लिए कम से कम तीन पीढ़ियों का क्रम अनिवंचनीय होता है, गुरु - उसका शिष्य फिर उसका शिष्य ; तथा वह उसी प्रकार से वादन करे, जिस प्रकार उसके गुरु व गुरु के गुरु किया करते थे । " १

" निश्चित रूपरेखायुक्त नियमबद्ध, अनुकरण साध्य परम्परागत घटना ही घराना है । एक विशेष प्रकार की शैली को अपना कर उसे परम्परागत चलाने वाले गायकों एवं वादकों से ही घराने का निर्माण होता है । " २

'संगीत के घराने कुछ और नहीं, वर्गीकरण की एक पद्धति हैं । वर्गीकरण के कारण ही गृहीत ज्ञान को हम संचित कर सकते हैं । घरानों की सीमा केवल संप्रदाय अथवा परम्परा तक सीमित नहीं, वरन् व्यक्ति विशेषताएं कायम रखने में वह अधिक समर्थ हैं । " २

कोषों में वर्णित उल्लेखों के अनुसार घराने का अर्थ है [3,8]

"Family, household, House,.....race, lineage."

इसके आधार पर घराने की पूर्ण परिभाषा निम्न प्रकार हो सकती है --

" घराना एक सांगीतिक रिश्ता है जो खून के रिश्ते के समान ही होता है । इसके माध्यम से न केवल संगीत की तकनीकें, रचनाएं एवं सिद्धान्त, बल्कि सांस्कृतिक संस्कार भी मौखिक माध्यम से, एक पीढ़ी के संगीतज्ञों द्वारा दूसरी पीढ़ी को प्रदान किये जाते हैं । यह क्रिया गुरु एवं शिष्य के आत्मिक सम्बन्ध के बाद ही पूर्ण हो सकती है । इस स्थिति में खून का रिश्ता न होने पर भी शिष्य, गुरु के लिए अपने बच्चे के समान ही माना जाता है, जिससे 'घराने' की मूल परिभाषा बनी रहे । "

इस अध्याय में उपर्युक्त परिभाषा को ध्यान में रखते हुए, घराने से सम्बद्ध अथवा असम्बद्ध प्रमुख सितार वादकों का संक्षिप्त जीवन-परिचय एवं उनकी वंशावली पर विचार किया जाएगा ।

अकबर के काल के बाद तंत्र-वादकों की उन्नति हुई । इस प्रकार इन वाद्यों के घरानों ने एक पृथक रूप ग्रहण किया ।[५] इससे पूर्व वाद्य केवल गायन की संगत के लिए ही प्रयोग किये जाते थे तथा उनकी कोई पृथक शैली नहीं थी । क्रमश: तानसेन का घराना दो भागों में विभक्त हो गया, एक पुत्र-वंश तथा दूसरा दौहित्र वंश । पुत्र-वंश रबाबी कहलाया तथा दौहित्र वंश बीनकार के नाम से प्रख्यात हुआ । इन्हीं के द्वारा अपने शिष्यों को सिखाने के लिए सितार को अपनाया गया । क्रमश: उन्नति को प्राप्त करते हुए सितार ने बीन का स्थान ले लिया और यहीं से सितार वादन के कुछ घराने प्रचलित हुए ।

सितार वादन की शैली के निर्माता के रूप में सर्वप्रथम अठारहवीं शताब्दी के फिरोज खां का नाम उल्लेखनीय है । उन्होंने फिरोजखानी बाज का निर्माण करके सितार वादन को अभीष्ट दिशा प्रदान की । ऊपर दी गयी परिभाषा के अनुसार यह सितार वादन शैली की प्रारंभिक स्थिति थी । इस प्रकार जिस प्रणाली का अभ्युदय हुआ, उस पर इस अध्याय में व्यवस्थित ढंग से प्रकाश डालने की चेष्टा की जा रही है ।

भारतीय संगीत जगत् में फिरोज खां एक ख्याल-रचयिता के रूप में 'अदारंग' के नाम से जाने जाते हैं । इनके जन्म तथा मृत्यु के बारे में कोई उल्लेख प्राप्त नहीं होता परन्तु न्यामत खां, जो पर्शियन साहित्य के अनुसार लालकुंवर के भाई थे,[६] के संदर्भ में इनका उल्लेख सर्वप्रथम तब आता है[७] जब मोहम्मद शाह 'रंगीले' ने यह सोचकर कि 'बीन एक अच्छा संगति वाद्य बन सकता है', न्यामत खां तथा फिरोज खां को, बीन को एक संगत वाद्य के रूप में प्रयोग करने का हुक्म दिया । न्यामत खां ने बादशाह को बहुत समझाने की कोशिश की, परन्तु वह सब व्यर्थ रहा ।

इसके पश्चात् न्यामत खां ने शहर के अमीरों के द्वारा बादशाह पर दबाब डालने की कोशिश की । परन्तु जब बादशाह फिर भी नहीं माने, तब वह दिल्ली दरबार छोड़कर चले गये तथा दिल्ली के बाहर रहकर विलम्बित लय में ख्यालों की रचना की जो ध्रुपद पर आधारित थीं । उन्हें मंझा कहा जाता था । इनके ख्यालों में राजा की बहुत प्रशंसा की गयी थी । जब यह ख्याल मोहम्मद शाह `रंगीले` के दरबार में पहुंचे तो वे उन्हें सुनकर अत्यधिक प्रसन्न हुए और न्यामत खां एवं फिरोज खां को पुन: दरबार में बुला लिया ।

इसके विपरीत `संगीत सुदर्शन` के लेखक पंडित सुदर्शनाचार्य एक अन्य व्याख्यान में (`अदारंग` के विषय में कुछ नहीं लिखते) कहते हैं [८] कि न्यामत खां ने दरबार छोड़ने के बाद अपना नया ख्याल दो भिखारियों को सिखाया तथा उन्हें मोहम्मद शाह `रंगीले` के दरबार में पेश किया । इन दोनों भिखारियों ने ही इस ख्याल को प्रचलित किया । न्यामत खां एवं उनके परिवार-जनों ने यह ख्याल कभी नहीं गाया ।

उपर्युक्त दोनों उल्लेखों में से `मीराते देहली` में वर्णित न्यामत खां के उल्लेख को देखते हुए डी०टी० जोशी का मत सत्यता के काफी नज़दीक प्रतीत होता है । `मीराते देहली` में न्यामत खां को `सदारंग` के नाम से भी वर्णित किया गया है ।[९] परन्तु इसमें `अदारंग` या फिरोज खां का कहीं भी उल्लेख नहीं मिलता जबकि यह पुस्तक मोहम्मद शाह `रंगीले` के दरबार के सभी संगीतज्ञों का वर्णन करती है । इससे ऐसा प्रतीत होता है कि इस पुस्तक में न्यामत खां के भाई के नाम से जिस व्यक्ति का वर्णन किया गया है, वह कोई अन्य नहीं, बल्कि फिरोज खां ही हैं (जैसा प्रथम अध्याय के भाग `ग` में वर्णित किया जा चुका है) । यह पुस्तक सन् १७३९ ई० में लिखी गयी थी । न्यामत खां ने `सदारंग` बनकर दिल्ली दरबार

छोड़ने के बाद ख्यालों की रचना की -- इससे यह अनुमान लगाया जा सकता है कि उपर्युक्त डी०टी० जोशी द्वारा वर्णित घटना सन् १७३६ ई० से पहले ही हो चुकी होगी। इसका अर्थ यह हुआ कि फिरोज खां `मीराते देहली` लिखे जाने से पहले ही उपस्थित होने चाहिये।

न्यामत खां एवं फिरोज खां के रिश्ते के बारे में भी इतिहास में कई मत वर्णित हैं। मौखिक उल्लेखों के अनुसार `फिरोज खां न्यामत खां के भाई थे।` जबकि आचार्य बृहस्पति के अनुसार `फिरोज खां न्यामत खां के कल्पित भाई खुसरो खां (जो समस्त ऐतिहासिक एवं प्रामाणिक तथ्यों पर तार्किक दृष्टि डाल कर अमान्य व्यक्ति सिद्ध किए जा चुके हैं) के पुत्र थे।[१०] परन्तु फिरोज खां को न्यामत खां का भाई मानना ही अधिक तर्कसंगत प्रतीत होता है। अगर समय पर ध्यान दिया जाय तो ये दोनों एक ही पीढ़ी के व्यक्ति प्रतीत होते हैं क्योंकि सन् १७३६ ई० से पहले (जबकि `मीराते देहली` लिखी गयी है) ही फिरोज खां मोहम्मद शाह `रंगीले` के दरबार में बीन-वादक तथा बाद में न्यामत खां के साथ ख्याल के रचयिता `अदारंग` उपनाम से भी जाने जाते थे, जिसे सभी विद्वान मानते हैं। न्यामत खां एवं फिरोज खां का `सदारंग` एवं `अदारंग` उपनामों से विख्यात होना तथा `रंगीले` के दरबार में एकसाथ रहना भी यही बतलाता है कि इनमें भाई का रिश्ता ही था। इस सम्बन्ध में यह ध्यान देने योग्य है कि मोहम्मद शाह `रंगीले` के अन्तिम समय के आसपास ही (सन् १७४८ ई०) न्यामत खां की मृत्यु हो गयी थी।[११] इसके बाद फिरोज खां दिल्ली छोड़कर `रुहेला` में सादुल्लाह खां के आश्रित हो गये जो कि इतिहास सम्मत है।[१२] सादुल्लाह खां की मृत्यु सन् १७६१ ई० में हुई।[१२] मोहम्मद शाह `रंगीले` के बाद अहमदशाह गद्दी पर बैठे। सन् १७५४ ई० में अहमदशाह आलमगीर को सिंहासन-च्युत कर दिया गया तथा जहांदार शाह के पुत्र `मोहम्मद अजीमुद्दौला

द्वितीय के नाम से गद्दी पर बैठे तथा इनकी प्रशंसा में लिखे गये `अदारंग` के कुछ ध्रुपद भी मिलते हैं।[१३] इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि फिरोज खां सन् १७५४ ई० से १७५५ ई० तक तो दिल्ली में अवश्य रहे तथा सन् १७६१ ई० तक सादुल्लाह खां के साथ राहौला में भी रहे। इन ऐतिहासिक तथ्यों से यह जान पड़ता है कि फिरोज खां ने सन् १७५५ से १७६० के मध्य दिल्ली छोड़ दी थी।

दरगाह कुली खां के `मीराते देहली` लिखने के समय (१७१९-१७३८) तक फिरोज खां `अदारंग`के नाम से विख्यात हो चुके थे। इस प्रकार अगर न्यामत खां एवं फिरोज खां का क्रमश: `सदारंग` एवं `अदारंग` नामकरण सन् १७३० ई० के लगभग भी हुआ, तब भी फिरोज खां को सन् १७०० ई० के आसपास ही पैदा होना चाहिये। यहां यह ध्यान देने योग्य है कि `अदारंग` नामकरण से पूर्व फिरोज खां मोहम्मद शाह `रंगीले` के दरबार (१७१९-१७४८) में एक प्रसिद्ध वीणा-वादक के रूप में भी रह चुके थे। प्रसिद्धि प्राप्त करने का अर्थ है कि फिरोज खां उस समय लगभग २२ या २५ वर्ष के अवश्य रहे होंगे जिससे कि इनके `माने गये` जन्म के समय (सन् १७००) को और भी पुष्टि मिलती है। इस प्रकार न्यामत खां एवं फिरोज खां की उम्र में इतना अन्तर नहीं मिलता कि उन्हें ताऊ (पिता का बड़ा भाई) व भतीजे की संज्ञा दी जा सके। इस मत को एक और दृढ़ आधार मोहम्मद करम इमाम द्वारा लिखी गई पुस्तक से भी मिलता है। इसमें `सदारंग` एवं `अदारंग` को सहोदर बताया गया है।[१४] इस उल्लेख के अध्ययन से न्यामत खां एवं फिरोज खां में `भाई का रिश्ता` मानने में तनिक भी शंका नहीं रह जाती।

उपर्युक्त विवेचनों से यह स्पष्ट हो जाता है कि खुसरो खां नामक व्यक्ति का न्यामत खां अथवा फिरोज खां से कोई रिश्ता नहीं था तथा फिरोज खां ही न्यामत खां के भाई थे जो `सहतार वादक` एवं न्यामत खां के भाई के नाम से `मीराते देहली`

में भी उल्लिखित है ।[६] सन् १७७० ई० तक फिरोज खां का राहौल खां में वर्णन मिलना तथा उसके बाद किसी राज्य में उल्लेख न मिलना, यह सिद्ध करता है कि १७७० के आसपास ही राहौल खां में फिरोज खां की मृत्यु हो गयी ।

इब्राहीम आदिलशाह के समय से ही सितार (जो उस समय तंबूर के नाम से जाना जाता था) की वादन शैली में कई प्रयोगात्मक सुधार हुए । इस समय से ही सितार पर हिन्दुस्तानी संगीत की छाप पड़ने लगी थी, क्योंकि इब्राहीम आदिलशाह एक अच्छा ध्रुपद गायक भी था । इस समय से सितार, राग बजाने के लिए प्रयुक्त होने लगा था ।[१५] हालांकि यह वाद्य उस समय, उससे पहले तथा उसके बाद भी एक संगत-वाद्य के रूप में प्रयोग किया जाता रहा, जिसका वर्णन कई विदेशियों के उल्लेखों में भी मिलता है । इब्राहीम आदिलशाह के प्रयत्नों के बाद ही सितार राज-दरबारों में बजाने योग्य समझा गया जिसका प्रमाण औरंगज़ेब के काल में लिखी `रागदर्पण` है । इसमें `शौकी तंबूरची` का वर्णन है जो भारतीय एवं ईरानी संगीत का ज्ञाता था ।[१६] इसी प्रकार `मीराते देहली` (अठारहवीं शताब्दी) में भी `बाकर` नामक तंबूरची की बहुत प्रशंसा की गयी है ।[१७] तथा न्यामत खां के भाई के सहतार वादन की तो इतनी अधिक प्रशंसा की गयी है कि उसे संसार का आश्चर्य बताया है । दरगाह कुली खां लिखते हैं[६] कि `वह सहतार बजाने में इतने निपुण थे कि उन्होंने इसे बजाने का नया तरीका निकाला । जो चीज़ बड़े-बड़े तंत्र-वाद्यों पर बजती है, वह अपने सहतार पर बजाते हैं, यह संसार का एक बहुत बड़ा आश्चर्य है । जब वह सहतार पर गाते हैं तो दिल चीर कर रख देते हैं । एक राग से दूसरी रागिनी निकालते, एक परदे से दूसरे परदे पर जाते, कहीं आवाज़ नहीं होती । बजाते-बजाते गाने लगते हैं, इतना प्रभावशाली बजाते हैं । इनके आगे दूसरे गायक मुंह खोलने में भी डरते हैं । इनमें एक रस है जो अन्यत्र नहीं मिलता ।`

उपर्युक्त उल्लेखों से फिरोज खां के संगीत एवं सितार वादन में उनके योगदान का आभास मिलता है। इसके अतिरिक्त फिरोज खां मोहम्मद शाह 'रंगीले' के दरबार में एक वीणा वादक तथा ख्याल रचयिता के रूप में भी रहे। मध्य अठारहवीं शताब्दी तक सितार पर तांत के परदे, चपटा ब्रिज, तीन या चार तार लगे हुए थे। सितार पर धातु के परदे न होने के कारण सीधे हाथ का काम ही फिरोज खां ने अधिक किया। फिरोजखानी बाज पर दृष्टिपात करने से ज्ञात होता है कि यह बाज कठिन था।

फिरोज खां का संगीत मुख्यत: ध्रुपद अंग पर आधारित था। इसका कारण उस समय की जनता का इस संगीत में रुचि रखना ही था। दिल्ली के बाद फिरोज खां राहौल में अपना संगीत लेकर गये। साहित्य पर दृष्टि डालने से ज्ञात होता है कि फिरोज खां के संगीत में रुचि लेने से उस समय जो प्रतिक्रिया हुई, वह बाद के सितार एवं वाद्य संगीत के लिए एक महत्वपूर्ण स्रोत बन गयी। राहौल में मुख्यत: रबाबी ही थे जिनके शिष्य एवं परिवार-जन आधुनिक सरोद वादकों के पूर्वज थे। इन विद्वानों की संगति फिरोज खां के सितार संगीत के लिए महत्वपूर्ण रही। यहीं पर फिरोज खां ने अपने बाज में रबाबी अंग, जैसे कि कठिन बोलों का प्रयोग तथा एक सप्तक से दूसरे सप्तक में वादन, का प्रारम्भ किया, जो बाद में फिरोजखानी बाज के नाम से जाना गया। फिरोज खां के संगीत में पूरब बाज के सभी मुख्य अंग थे। इस सम्बन्ध में यह ध्यान देने योग्य है कि अठारहवीं शताब्दी के अंतिम चौथाई भाग में राहौल एवं अवध के दरबार में अत्यधिक नज़दीकी सम्बन्ध रहे एवं यहीं पर पूरब बाज का भी जन्म हुआ। एक अन्य विशेष बात यह है कि लखनऊ दरबार के कुछ विख्यात वादक रामपुर के ही निवासी थे यथा गुलाम रज़ा तथा कुतुबुद्दौला जो गुलाम रज़ा के सहपाठी एवं मशहूर सितारिए थे। हालांकि फिरोज खां के संगीत की पूर्ण जानकारी नहीं है, फिर भी यह कहा जा सकता है कि उनका संगीत एक भिन्न

प्रकार की शैली थी जिससे बाद के `सितार संगीत` को बहुमूल्य सामग्री प्राप्त हुई ।

उपर्युक्त विवरण के साथ ही एक अन्य प्रश्न भी विचारणीय है कि फिरोज खां तानसेन वंश के थे अथवा नहीं ? इस सम्बन्ध में अनेक मत प्रचलित हैं । आचार्य बृहस्पति कहते हैं[१३] कि ``सदारंग` और खुसरो खां से तानसेन के वंश का कोई संबंध नहीं ।` (यहां वर्णित खुसरो खां ही फिरोज खां `अदारंग` हैं क्योंकि संगीत के इतिहास में खुसरो खां का `सदारंग` के संदर्भ में कहीं उल्लेख नहीं है) यह उल्लेख लिखित साहित्यों के परे है । `मीरातें देहली` में दो तानसेन के वंशज कलाकारों को वर्णित करना कदापि यह सिद्ध नहीं करता कि न्यामत खां अथवा उनका भाई फिरोज खां तानसेन के वंश के नहीं थे । पर्शियन उल्लेखों के अनुसार[६] `न्यामत खां तानसेन के दौहित्र वंश से संबंधित थे एवं लालकुंवर के भाई थे ।` यह मत तथ्यों के अधिक नज़दीक प्रतीत होता है क्योंकि इस प्रकार का उल्लेख अन्य साहित्यों में भी मिलता है । न्यामत खां एवं फिरोज खां को सर्वसम्मति से उच्चकोटि का बीनकार माना गया है । उस समय तक बीन अधिकतर तानसेन के वंशजों द्वारा ही बजायी जाती थी तथा उन्होंने अपने शिष्यों को बीन नहीं सिखायी । डी०टी० जोशी के अनुसार भी फिरोज खां तानसेन के पुत्री वंशीय थे । आदि उल्लेखों के आधार पर कहा जा सकता है कि फिरोज खां तानसेन के वंश के ही होने चाहिये ।

संगीत साहित्य में मसीत खां के सम्बन्ध में भी कोई उल्लेख नहीं मिलता । आधुनिक समय में इनके सम्बन्ध में अनेक मतभेद हैं । एक उल्लेख में मसीत खां को तानसेन के पुत्र विलास खां के वंशज रागराज खां का लड़का बताया जाता है ।[१८] डी०टी० जोशी के अनुसार यह तानसेन के पुत्री वंश के फिरोज खां के लड़के या भाई थे ।[१९] तथा सुदर्शनाचार्य शास्त्री ने मसीत खां को फिरोज खां का लड़का बतलाया है ।[२०]

उपर्युक्त तीनों उल्लेखों पर दृष्टिपात करके यह कहा जा सकता है कि उस समय बहुत कम सितार वादक थे तथा फिरोज खां भी एक अच्छे बीन एवं सितार वादक थे अत: मसीत खां को उनसे अवश्य ही प्रेरणा मिली होगी । इस प्रकार यह माना जा सकता है कि मसीत खां जो वास्तव में रागराज खां (रागरस खां) के पुत्र थे, उनका फिरोज खां से सांगीतिक रिश्ता था । निष्कर्ष के रूप में यह कहा जा सकता है कि फिरोज खां से प्रेरित होकर ही मसीत खां ने सितार बजाना प्रारम्भ किया । बहादुर खां की मृत्यु सन् १८४१ ई० में हुई,[२१] इस आधार पर अगर बहादुर खां के पूर्वजों की आयु का अनुमान लगाया जाय तो मसीत खां (जो बहादुर खां के पिता थे) का जन्म सन् १७४० से १७५० ई० के मध्य होना चाहिये । क्योंकि फिरोज खां सन् १७५५ से १७६० के मध्य दिल्ली छोड़कर राहौल चले गये थे । इस समय तक मसीत खां केवल १५-२० वर्ष के होंगे । इस प्रकार फिरोज खां व मसीत खां में अगर पिता-पुत्र या गुरु-शिष्य में से कोई भी रिश्ता होता तो वह फिरोज खां के साथ राहौल अवश्य जाते अन्यथा केवल ५-१० साल की शिक्षा एक प्रारंभिक विद्यार्थी के लिये पर्याप्त नहीं है जिससे वह इतना अधिक विख्यात हो सके । अगर बहादुर खां के जन्म अथवा मसीत खां की मृत्यु का सन् पता चल जाय तो इस सम्बन्ध में कुछ निश्चित रूप से कहा जा सकता है । मसीत खां एक बीन वादक के रूप में भी बहुत प्रतिष्ठित थे ।[२२] इन्होंने सितार वादन को एक अभीष्ट दिशा प्रदान की । उन्हीं के प्रयासों से एक महत्वपूर्ण बाज का निर्माण हो सका । यह बाज ध्रुपद पर आधारित था । मसीत खां ने इस बाज में ध्रुपद के आधार पर, स्वमस्तिष्क की सहायता से चार चांद लगा दिये । इनकी गतों की खूबी निश्चित बोलों का प्रयोग थी जो सरल एवं बंधे हुए थे । प्राचीन दिल्ली के गत एवं तोड़ों को देखने से ज्ञात होता है कि यह बाज ध्रुपद के सिद्धान्तों पर आधारित था । गत शब्द का प्रयोग भी सबसे पहले सितार की गतों के लिए ही किया

गया। मसीत खां की गतों की अपनी कुछ विशेषतायें थीं, यथा -- ध्रुपद अंग, एक निश्चित प्रकार का चलन, स्वरों की बढ़त, विलम्बित लय एवं राग की शुद्धता। ये सब विशेषतायें सितार पर ध्रुपद का प्रभाव दर्शाती हैं। कुछ मसीतखानी गतें तो ध्रुपदीय रचनाओं का ही परिवर्द्धित रूप बतलायी जाती हैं।[२३] इस सम्बन्ध में लिखित इतिहास की कमी है, परन्तु अठारहवीं शताब्दी एवं इसके बाद की लिखी पुस्तकों एवं घरानेबाज सितार वादकों से ही इस संबंध में कुछ ज्ञात किया जा सकता है[२४] जो निम्न है।

मसीत खां ने सितार वादन की सामग्री ध्रुपद से ली, परन्तु इसे बजाने का उनका अपना अलग तरीका था। ध्रुपद आलाप के समान सितार पर बंधी गत का विस्तार था जिसमें विलम्बित लय में तोड़े बजाए जाते थे। इस प्रकार मसीत खां का वादन ध्रुपद का विस्तार एवं बीन की तकनीकों का सम्मिश्रण था।

मसीत खां ने सितार वादन में महत्वपूर्ण योगदान दिया। इन्होंने केवल स्वयं ही नहीं बजाया वरन् अपने अच्छे शिष्य भी बनाए। जो संगीत-प्रेमी इनके परिवार के नहीं थे, उन्हें भी इन्होंने संगीत की शिक्षा दी। रहीम हुसैन एवं नसीर अहमद बीनकार का भी मसीत खां के शिष्यों में उल्लेख मिलता है।[२२] इनके शिष्य दामोदर खां अपनी गत एवं तोड़ों के लिए काफी प्रसिद्ध थे, उनकी गतें उन्नीसवीं शताब्दी की पुस्तकों में प्राप्य हैं।[२५] मसीत खां के काल से दिल्ली सितार का एक मुख्य केन्द्र बन गयी थी। मसीत खां ने अपने पुत्र बहादुर खां एवं भतीजे दूल्हे खां को भी सितार की शिक्षा दी। डी०टी० जोशी एवं बी०के० रायचौधरी दूल्हे खां को बहादुर खां का भतीजा कहते हैं।[१८,१९] जबकि सुदर्शनाचार्य शास्त्री दूल्हे खां को मसीत खां का भतीजा ही बताते हैं।[२०] यह विचार अधिक तर्कसंगत प्रतीत होता है। दूल्हे खां को बहादुर खां का भतीजा मानने पर बहादुर खां को एक पीढ़ी पहले पैदा होना पड़ेगा। सैयद अहमद खां के अनुसार बहादुर खां की मृत्यु सन् १८४१ ई० में

हुई ।[२१] इस आधार पर अगर मृत्यु के समय बहादुर खां की उम्र ७० वर्ष भी हो तो सन् १७७१ ई० के करीब बहादुर खां का जन्म होना चाहिये । ऐतिहासिक तथ्यों के अनुसार रहीमसेन की मृत्यु सन् १८४७-१८५७ के मध्य में हुई । अत: रहीमसेन की उम्र अगर मृत्यु के समय ७० वर्ष के करीब हो, तो उन्हें १७७७-८७ के मध्य पैदा होना चाहिये । रहीमसेन दूल्हे खां के दामाद थे । इन सब तर्कों के आधार पर यह निष्कर्ष निकलता है कि दूल्हे खां एवं बहादुर खां समानवय ही थे । दोनों की जो वादन-सामग्री प्राप्त होती है,[२०,२६] उससे भी ऐसा प्रतीत होता है कि यह एक ही गुरु के शिष्य थे । सुदर्शनाचार्य शास्त्री भी बहादुर खां एवं दूल्हे खां को समानवय ही मानते हैं । सर्वप्रथम सितार की गतें `कानून सितार` में लिखी गयीं जिसे बहादुर खां की शिष्या बीबीजान के शिष्य सैयद सफदर हुसैन खां ने सन् १८७० ई० में पूर्ण किया था । इस पुस्तक से सितार वादन में बहादुर खां के योगदान का पता चलता है तथा ऐसा प्रतीत होता है कि बहादुर खां अपनी पूरी उम्र दिल्ली में ही रहे । बहादुर खां के पश्चात् हसन खां, बीबीजान तथा बीबीजान के बाद सैयद सफदर हुसैन खां ने इस घराने के अस्तित्व को बनाए रखा ।[२२,२६] `कानून सितार` के उल्लेख के अनुसार,[२६] `बहादुर खां एक बीनकार थे । हाथ पर चोट लग जाने के कारण जब वह बीन न बजा सके तब उन्होंने बीन के तोड़ों को सितार में भर दिया जिससे यह वादन इतना क्लिष्ट हो गया कि लेखक ने बीबीजान के अतिरिक्त किसी को ठीक से बजाते नहीं सुना ।`

सितार की कई महत्वपूर्ण तकनीकें `कानून सितार` में लिखी हुई हैं, जैसे मीड़, ज़मज़मा, सूत व फाला । परन्तु यह कहना कठिन है कि बहादुर खां कौन सी तकनीकों को बजाते थे । `सरमाय: इशरत` में बहादुर खां की दी गयी गतों में मीड़ एवं ज़मज़मे का काम स्पष्ट दिखाया गया है । फाले का काम इनके अंतिम

समय में प्रारम्भ हो गया था । `मीड़` सितार पर एक ध्रुपद का अंग था जबकि `ज़मज़मा` सितार वादन के सौन्दर्य को बढ़ाने के लिए एक अध्रुपदीय तत्व था । सितार की तकनीकों में से ये दोनों ही सर्वप्रथम प्रयोग में आयीं । संभवत: मसीत खां ने भी इन तकनीकों को सितार पर बजाया होगा क्योंकि उनके समय तक सितार पर धातु के परदे आ गये थे । बहादुर खां के वादन में ठाह, दून, आड़, किवाड़, गमक, सूत, तान और मिज़राब के तोड़े ही बजते थे । सरमाय: इशरत में बहादुर खां द्वारा बजाई राग दरबारी कान्हड़ा की गत भी दी गयी है[२७]। सफदर हुसैन खां मसीतखानी गत के विषय में, ~~लिखते हुए~~ बहादुर खां के वादन के विषय में लिखते हुए प्रतीत होते हैं । इनके अनुसार सितार की हर गत में १६, ३२ या ४८ बोल होते थे तथा उनके साथ ठेके की ताल बजती थी । इससे ऐसा प्रतीत होता है कि बहादुर खां के वादन में लय वैभिन्न्य एवं अलंकार का भी स्थान था । बहादुर खां के पुत्र का नाम हसन खां था । यह भी सितार पर मसीतखानी बाज बजाया करते थे ।[२८] इनकी बजाई भूपाली राग की गत भी प्राप्त होती है ।[२९]

जिस प्रकार बहादुर खां `सितार वादन सामग्री` के रचयिता के रूप में प्रचलित थे, उसी प्रकार दूल्हे खां प्रदर्शन-कार्य में प्रवीण थे । `संगीत सुदर्शन` में दूल्हे खां को ध्रुपद एवं बीन का विशेषज्ञ एवं सितार का उस्ताद बताया गया है ।[३०] एक अन्य उल्लेख के अनुसार दूल्हे खां ने सितार पर बहुत कड़ी मेहनत की जिससे सितार की प्रचलितता बहुत बढ़ गयी ।[३१] कुछ समय दूल्हे खां ग्वालियर के दरबार में भी रहे ।[३२] बहादुर खां एवं दूल्हे खां के उल्लेखों से सितार पर बीन का प्रभाव पता चलता है । परन्तु अठारहवीं शताब्दी के अन्त तक सितार की वादन प्रणाली बीन से पृथक थी । उस समय संगीतज्ञों की सितार में अधिक रुचि नहीं थी । मीर नसीर अहमद उन्नीसवीं

शताब्दी के सबसे ऊंचे बीनकार थे।[२६] नसीर अहमद का उल्लेख 'सरमाय: इशरत' में भी किया गया है। इसके एक एलान में नसीर अहमद को मसीत खां का शिष्य बताया गया है।[२२] 'नग्माए सितार' के अनुसार यह उन बीनकारों में से थे जिन्होंने सितार की कई गतें बनायीं।[३०] सादिक अली खांने इनकी राग देस की गत दी है। इनकी गत को देखने से ज्ञात होता है कि उन्होंने भी बांए हाथ के काम को प्रधानता दी जो सभी बीनकारों की विशेषता थी।[३१]

बहादुर खां के पश्चात उनके पुत्र हसन खां एवं शिष्या बीबीजान का उल्लेख मिलता है। सैयद सफदर हुसैन खां जो बीबीजान के शिष्य थे, उन्होंने बीबीजान के वादन की बहुत अधिक प्रशंसा की है तथा लिखा है[२६] कि 'उनका जो सितार सुना, अहो हो, हाथ में क्या दंगिनी और बल, उनकी ज़ीर और लय ने सावन भादों का मजा और इन्द्र की सभा का समय दिखा दिया। वास्तव में यह सितार बजाने में अद्वितीय हैं + + + + और क्यों न हो, वह मसीत खां के पुत्र बहादुर खां की शिष्या हैं जिनका नाम बड़े-बड़े गुणी आज खाक चाटकर लेते हैं।' इस प्रकार सितार वादन की जो परम्परा मसीत खां से प्रारम्भ हुई, उनके बाद की पीढ़ी ने उसी का अनुकरण किया। मसीत खां के बाद उनके पुत्र बहादुर खां, बहादुर खां के बाद उनके पुत्र हसन खां तथा शिष्या बीबीजान तथा बीबीजान के शिष्य सफदर हुसैन खां ने इस परम्परा को विकसित किया जिससे इस स्थिति पर आकर इन वादकों ने घराने का रूप ग्रहण कर लिया। सादिक अली खां स्वयं को मसीत खां के घराने का बताते हुए लिखते हैं कि इस समय सैकड़ों मसीत खां के शिष्य प्रचलित थे।[२२] इस प्रकार इन वादकों को दिल्ली घराने के वादक कह सकते हैं, क्योंकि ये आद्यन्त दिल्ली में ही रहे।

उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में मसीतखानी बाज बजाने वालों ने(जो इसी कथित दिल्ली घराने से ही संबंधित थे) स्वयं को `सेनी घराने` के वादक कहा । इनमें रहीमसेन का नाम अग्रणीय है । बहादुर खां, दूल्हे खां एवं हसन खां के बाद की पीढ़ी दिल्ली में लड़ाइयों के कारण राज्याश्रय न मिलने से जयपुर तथा उसके आस-पास बस गयी । इस प्रकार इस घराने को जयपुर घराने की पृथक संज्ञा भी दी जा सकती है ।

दूल्हे खां के बाद के वादक जयपुर में बस गये तथा `सेनी घराने` के नाम से जाने गये । इस सेनी घराने की नींव रहीमसेन ने ही डाली थी । जयपुर सेनियाओं ने मुख्यत: सितार ही अपनाया ।

रहीमसेन के सम्बन्ध में कई मत प्रचलित हैं । कुछ के अनुसार बहादुर सेन के लड़के सुखसेन तथा सुखसेन के लड़के रहीम सेन थे ।[१८] जबकि अमृत सेन के शिष्य सुदर्शनाचार्य शास्त्री के अनुसार रहीम सेन दूल्हे खां के दामाद तथा शिष्य थे तथा वह तानसेन के वंश के थे । इनके पिता सुखसेन एक ध्रुपद गायक थे रहीम सेन अपने पिता से ध्रुपद सीखा करते थे परन्तु अभी उनकी शिक्षा पूर्ण भी नहीं हो पायी थी कि उनके पिता का स्वर्गवास हो गया । किसी और से न सीखने की इच्छा के कारण अपने श्वसुर दूल्हे खां से सितार वादन की शिक्षा लेनी प्रारम्भ की ।[३२] यह मत तर्कसंगत प्रतीत होता है । आयु के हिसाब से रहीम सेन बहादुर खां की अगली पीढ़ी में ही होने चाहिये । इसी प्रकार के विचार भगवतशरण शर्मा के भी हैं । इनके अनुसार[३३], `रहीमसेन अपने युग के अद्वितीय कलाकार थे । सच तो यह है कि इनके चमत्कृत सितार वादन के फलस्वरूप ही इनके यहां परम्परा से चली आनेवाली तानसेन की ध्रुपद गायकी का अंत हो गया ।

कुछ इसी प्रकार के विचार सुदर्शनाचार्य शास्त्री के भी हैं। इनके अनुसार भी इस समय तक सितार कुछ विकसित नहीं हुआ था तथा उच्चकोटि के कलाकार उसे नीची दृष्टि से देखते थे। एक दिन किसी ने रहीमसेन से कहा कि तुम 'दिर दिर दा दिर दारा' बजाते जाओ। इस पर रहीमसेन ने अपने गुस्से को काबू में रखकर कहा कि, 'इसमें कोई शक नहीं कि सितार ध्रुपद से काफी नीचा है। ध्रुपद एक हीरा है जबकि सितार एक पत्थर का टुकड़ा है। लेकिन मैं इस पत्थर के टुकड़े को साफ करके हीरे के बराबर बना दूंगा।' इसके बाद इन्होंने कड़ी मेहनत करके सितार को बीन के बराबर बना दिया।[३३] रहीमसेन शुरु की उन्नीसवीं शताब्दी में फर्रुखाबाद के राजा के दरबार में नौकर थे। इनका सबसे बड़ा लड़का सन् १८१३ ई० में पैदा हुआ। उसी समय रहीम सेन को नबाब के उस्ताद का खिताब मिला। उनके शिष्यों में से प्रमुखत: उनके पुत्र अमृत सेन एवं भाई हुसैन खां थे। हुसैन खां इन्दौर में रहते थे और वहां के एक मशहूर संगीतकार हुए। उनकी मृत्यु भी वहीं हुई। रहीमसेन के दो अन्य पुत्रों के भी नाम न्यामत सेन एवं लालसेन थे। रहीमसेन ने लाल सेन को तथा अमृतसेन ने न्यामत सेन को सिखाया परन्तु कोई भी अमृतसेन जितना काबिल नहीं बन सका।[३४] रहीमसेन तथा अमृतसेन का नाम सामान्यत: साथ-साथ ही लिया जाता था। इनकी जोड़ी बहुत मशहूर थी। सितार की युगलबंदी का इतिहास यहीं से प्रारम्भ होता है। रहीमसेन का वर्णन मोहम्मद करम इमाम ने भी किया है परन्तु रहीम सेन को उन्होंने मसीत खां का पुत्र बताया है[३५] जो तथ्यों के परे हैं। संभवत: मादन-उल-मूसीकी से ही प्रेरित होकर आचार्य बृहस्पति भी रहीमसेन को मसीत खां का पुत्र बताते हैं। इनके अनुसार मसीत खां के पुत्र रहीमसेन मसीतखानी शैली के उत्तम वादक थे।[३६] परन्तु काल के अन्तर और अमृतसेन के जन्मकाल को देखकर इस कथन को

कदापि सत्य नहीं माना जा सकता । इसके पक्ष में 'कानून सितार' का वर्णन काफी उल्लेखनीय है जिसमें बहादुर खां को मसीत खां का पुत्र बताया गया है ।[२६] इसके साथ ही सुदर्शनाचार्य शास्त्री द्वारा भी रहीमसेन को सुखसेन का पुत्र बताया गया है ।[३२] सुदर्शनाचार्य शास्त्री रहीमसेन के पुत्र अमृतसेन के शिष्य थे तथा सफदर हुसैन भी मसीत खां के पुत्र बहादुर खां की शिष्या के शिष्य थे । अत: दोनों ही क्रमश: रहीमसेन तथा मसीत खां से शिष्यों के रूप में उनसे संबंधित थे अत: इनके विचारों में सत्यता का होना निश्चित रूप से कहा जा सकता है । इस प्रकार अनेक पक्ष एवं विपक्षीय अध्ययनों के उपरान्तु यह सिद्ध हो जाता है कि रहीमसेन सुखसेन के पुत्र एवं मसीत खां के वंशज दूल्हे खां के दामाद थे ।

रहीम सेन के वादन में राग की शुद्धता पर अत्यधिक ध्यान दिया जाता था, जो ध्रुपद गायकी का प्रमुख अंग है । सुदर्शनाचार्य शास्त्री कहते हैं कि, 'रहीमसेन की गतें राग की परिभाषा ही हैं ।'[३७] अगर कोई उनके किसी राग की गत को जानता है तो वह उस राग का विस्तार अपनी मर्जी से कर सकता है । कुछ इसी प्रकार के मत सैयद अहमद खां के भी हैं । उनके अनुसार 'छह राग व छत्तीस रागिनियां रहीमसेन के वाद्य के तारों की गुलाम थीं ।'[३८] इसी प्रकार ध्रुपद के प्रथम प्रयोग से वाद्य संगीत में अनुकृत जोड़ अंग के विषय में सुदर्शनाचार्य शास्त्री कहते हैं कि रहीमसेन गत व तोड़ा बजाने से पहले जोड़ बजाते थे । यह जोड़ मसीत खां के समय में नहीं बजाया जाता था । इस उल्लेख के अनुसार यह जोड़ बीन आलाप का ही एक अनुकरण था ।[२०] रहीमसेन द्वारा जोड़ालाप बजाने का मुख्य कारण इसे ध्रुपद एवं बीन की श्रेणी में लाकर खड़ा करना होगा जैसी कि उन्होंने कसम खायी थी । सुदर्शनाचार्य के अनुसार रहीमसेन के गत व तोड़े ध्रुपद व ख्याल के स्थाई-अन्तरे की ही प्रेरणा थे । इस प्रकार रहीमसेन का वादन केवल ध्रुपद व बीन का ही अनुकरण नहीं था, उनकी

गतों में अपनी एक अलग दुरूहता एवं कठिनता थी ।[३६] जिसके कारण सुदर्शनाचार्य ने भी उनकी गतों को बहुमूल्य हीरों की संज्ञा दी है । उनके अनुसार रहीमसेन की गतें कठिन एवं मीड़ से भरी हुई थीं अत: उन्हें ठीक प्रकार बजाना कोई आसान बात नहीं थी ।[२०] रहीमसेन के काल से ही सितार के रहस्यों को अपने परिवार-जनों तक सीमित रखकर सहेजने की परम्परा का प्रारम्भ हुआ । इन वादकों ने अपने वंशजों के अतिरिक्त अन्य किसी को अपने घराने की सितार शिक्षा नहीं दी जबकि इनके पूर्वजों ने अपने बृहत ज्ञान को देने में कभी संकोच ही महसूस नहीं किया तथा अपने वंश एवं बाहर के सभी इच्छुकों को सितार की शिक्षा दी । यही कारण था कि, जिस प्रकार वीणा वादकों के द्वारा अपने बाज को अपने वंशजों अथवा परिवार-जनों तक ही सीमित रखने से उनकी कला की अवनति होती गयी, उसी प्रकार रहीमसेन, जिन्होंने सेनी घराने की नींव डाली (इनसे पहले तानसेन के वंशजों की सेनी घराने के नाम से नहीं जाना जाता था) परन्तु अपने बाज को अपने ही परिवार में सीमित रखा, जिसके कारण सेनी घराने का अंत हो गया तथा आज कोई भी असली सेनी बाज बजाने वाला नहीं है । जो लोग मुश्ताक अली खां को सेनी घराने का अंतिम प्रतीक मानते हैं, वे इस सेनी घराने के अंतिम वादकों यथा -- बरकतउल्ला के विषय में पढ़कर वास्तविकता को समझ सकते हैं ।

रहीमसेन की गतें न ध्रुपद पर आधारित थीं और न ही ख्याल पर । यह अपने में पूर्ण एवं स्वयं की कल्पना थीं । सुदर्शनाचार्य जी के अनुसार इनकी गतें अगर मुश्किल थीं तो गतों के साथ बजाए जाने वाले फिकरी तोड़ों को समझना भी कठिन था ।[३७] इस प्रकार रहीमसेन ने सितार की वादन परम्परा को प्रोत्साहन तो दिया ही, साथ ही इसकी वादन प्रणाली में भी अपने घराने से (मसीत खां, दूल्हे खां) आने वाली वादन की विशेषताओं को ध्यान में रखते हुए उसमें ख्याल अंग का समावेश

भी किया । उससे पहले यह केवल ध्रुपद पर ही आधारित थी । जोड़ आलाप का वादन, कठिन गत एवं तोड़ों के समावेश से इन्होंने सितार को वास्तव में दिव्यमणि का रूप दे, इसके वादन को वीणा, ध्रुपद, धमार, ख्याल, बीन आदि सभी की विशेषताओं से ओतप्रोत कर दिया । इस प्रकार सितार के सांगीतिक क्षेत्र में श्रेष्ठतम सितार वादक बनने का श्रेय प्रथमत: रहीमसेन को ही है ।

रहीमसेन की मृत्यु के संबंध में कहीं भी कोई उल्लेख नहीं मिलता । परन्तु सन् १८४७ ई० में लिखी गयी पुस्तक 'असर-अस-सनादिद' में उस समय तक उनकी उपस्थिति का आभास होता है ।[३८] मादन-उल-मूसीकी (सन् १८५६) एवं 'संगीत सुदर्शन' के अध्ययन से ऐसा प्रतीत होता है कि यह सन् १८५७ ई० तक वह दिवंगत हो गये थे ।[४०] इसलिये रहीमसेन का मृत्यु समय सन् १८४७ से सन् १८५७ ई० के बीच में ही होना चाहिये ।

रहीमसेन के पश्चात् इनके पुत्र अमृतसेन का नाम सेनी सितार वादकों में बहुत ही सम्मान के साथ लिया जाता है । इनका जन्म सन् १८१३ ई० में हुआ । इनको शुरु से ही संगीतमय वातावरण मिला । अनुकूल परिस्थितियों के कारण एवं अपने पिता से सीना-ब-सीना तालीम लेने के कारण छोटी उम्र में ही इनकी गणना प्रभावशाली सितार वादकों में होने लगी । जैसाकि पहले भी बताया जा चुका है कि रहीमसेन एवं अमृत सेन की जोड़ी मशहूर थी । अमृत सेन पिता से भी कुशल कलाकार थे । अमृत सेन के दो छोटे भाई थे जिनके नाम न्यामत सेन तथा लालसेन थे । इन भाइयों के सम्बन्ध में सैयद अहमद खां ने भी अपनी पुस्तक में लिखा है। कि उनके अनुसार अमृतसेन के दो अन्य भाई भी थे जिनमें से न्यामत सेन बचपन में ही मृत्यु को प्राप्त हो गए तथा लालसेन भी बीमारी के कारण अच्छे कलाकार न बन

सके ।[३८] सन् १८२७ ई० में १४ वर्ष की उम्र में अमृतसेन को झझ्झर के नवाब से अपनी तनख्वाह, नौकर तथा कुछ अन्य सामग्री मिलती थी ।[३४] एक अन्य विवरण के अनुसार अमृतसेन को जयपुर नरेश, महाराजा रामसिंह का दीर्घकालीन आश्रय प्राप्त हुआ । जयपुर राज्य से अनेक प्रकार के सुख-सुविधाएं एवं सम्मान इन्हें जीवन भर मिले । इनमें सितार वादन की अनेक प्रमुख प्रतिभाओं के साथ-साथ एक अन्य विशेषता यह थी कि यह एक ही राग को अभिन्न कल्पनाओं के साथ प्रस्तुत करने की क्षमता रखते थे । इनके वादन के विषय में कहा जाता है कि इन्होंने सितार पर घोर अभ्यास किया तथा कई नयी-नयी गतों का निर्माण करके वीणा के आलाप अंग एवं बढ़त को भी इसमें भर दिया । अमृतसेन को अपने पिता से भी अधिक ज्ञान हो गया जिससे कि वह अपने पिता से भी अधिक मशहूर हो गए । अमृतसेन सन् १८५७ ई० में अल्वर के महाराजा शुतल सेन के दरबार में थे । अमृत सेन के शिष्यों में उनके मामा हैदर बख्श व उनके पुत्र मन्नू खां, आलम खां तथा मन्जूर खां के लड़के हाफिज़ खां भी थे । यह सब अच्छे ध्रुपदिये थे तथा वीणा और सितार के अच्छे वादक थे । हाफिज़ खां शुरू में राजस्थान के एक छोटे राज्य में नौकर थे । हाफिज खां की मृत्यु सन् १९०६ ई० में हुई ।[४१] हैदरबख्श के सबसे बड़े पुत्र वाजद अली खां तथा अमृत सेन की बहन के लड़के निहालसेन तथा अमीर खां ने भी अमृत सेन से सितार की शिक्षा ली । अमृतसेन ने बाद में निहाल सेन को गोद ले लिया । अमृत सेन के सभी शिष्यों में से अमीर खां ही एक उच्चकोटि के सितार वादक बने । अमृतसेन के शिष्य दो-दो की जोड़ी में बजाना पसंद करते थे । एक गत की लय को बनाए रखता था तथा दूसरा विभिन्न प्रकार के तोड़े बजाता था तथा कुछ देर बाद दोनों विपरीत क्रम अपना लेते थे । इस प्रकार आधुनिक जुगलबन्दी जिसका कि रहीमसेन एवं अमृतसेन ने सूत्रपात किया था, इनके शिष्यों द्वारा अनुकृत की गयी ।

अमृतसेन के सितार वादन के विषय में जितना लिखा जाय उतना ही कम है। क्योंकि जैसा इनके विषय में उल्लेख कियागया है कि यह १४ वर्ष की अल्पायु में ही दरबारी कलाकार बन गये थे। इसी से इनकी प्रतिभा का पूर्ण ज्ञान हो जाता है। 'संगीत सुदर्शन' में इन्हें राग का बादशाह कहा गया है।[३३] राग का शुद्ध स्वरूप श्रोता के सम्मुख रखने में सेनिया घराने वालों की कोई मिसाल नहीं। इनकी व इनके घराने की कुछ गतों का उल्लेख 'संगीतसुदर्शन' में किया गया है।[४२] इनमें से कुछ गतों का उल्लेख बाज के अध्याय में दिया जा चुका है। 'संगीत सुदर्शन' में बहुत से अप्रचलित राग हैं जिनसे यह पता चलता है कि इन्हें अप्रचलित रागों का भी बहुत श्रेष्ठ ज्ञान था जिससे कि यह उन्हें भी जैसा का तैसा ही रखकर बजा लेते थे। साथ ही यह गतें इस बात की भी द्योतक हैं कि इन्होंने प्रचलित के साथ ही अप्रचलित संगीत को भी समान महत्त्व देकर विकसित किया। इनकी लय कठिन तथा गतें मीड़ से भारी हुई थीं।[४३] इनके वादन में गत-तोड़ों के बजाने से पूर्व जोड़ का वादन होता था। कुछ संगीत-शास्त्रियों का मत है कि सेनी घरानें में जोड़ नहीं बजाया जाता था, परन्तु यह मत केवल मसीतखां एवं बहादुर खां के समय तथा बाद में बरकतउल्ला खां के समय में ही सही प्रतीत होता है। उल्लेखों के आधार पर यह स्पष्ट है कि अमृतसेन एवं उनके शिष्यों ने जोड़ालाप भी काफी मात्रा में बजाया जो कि बीन आलाप का ही एक अनुकरण था।[२०,२५]

इस प्रकार अमृत सेन की सितार वादन पद्धति को निम्न प्रकार कहा जा सकता है। प्रथम ध्रुपद की गायकी तथा वीणा के ढंग से ~~आलाप एवं~~ जोड़, द्वितीय गत, अर्थात् स्थाई इसके पश्चात तोड़े यानी अन्तरा तथा अन्त में फिकराबन्दी अर्थात् ख्याल गायकी के ढंग की द्रुत गतों की तानें। इनकी गतें एवं तोड़े सीधे

तथा आसान नहीं थे। इनके वादन में मिज़राब के काम का बाहुल्य था। मिज़राब के बोलों का लय में समावेश सितार की गत एवं तोड़ों के लिए काफी महत्वपूर्ण एवं सुन्दर था। इन्होंने ध्रुपद की सीमाओं को तोड़कर उसमें ख्याल गायकी तथा अन्य तकनीकों का भी प्रयोग किया। संभवत: यह तत्कालीन नबाव एवं बादशाहों की इच्छानुसार किया गया होगा। इस प्रकार इनके वादन में राग की विशिष्टताओं को ध्यान में रखते हुए ध्रुपद गायन, बीन तथा ख्याल आदि के संयोग से स्वतंत्र वादन किया जाता था। इनके वादन के अध्ययन से ऐसा प्रतीत होता है कि इनकी शैली धीरे-धीरे ख्याल से प्रभावित होने लगी थी। जिस प्रकार मसीत खां के द्वारा ध्रुपद के आधार पर सितार के लिए एक अलग प्रकार का संगीत तैयार किया गया। ठीक उसी प्रकार अमृतसेन ने सभी शैलियों को अपने सितार में मिलाने के साथ भी, उसे किसी विशिष्ट शैली का ही अनुकृत रूप नहीं रखा। वरन् सब शैलियों के आधार पर अपने चिंतन से सितार का बाज तैयार किया।

अमृत सैन सर्वप्रथम झझ्झर फिर अलवर तथा अन्तत: जयपुर में रहे। सुदर्शनाचार्य के अनुसार वह अमीराना अंदाज में रहा करते थे, चांदी के बर्तन तथा बहुत ही कीमती शाल प्रयोग में लाया करते थे। उनके पास राजा की दी हुई जमीन भी थी जिससे उनकी बाकी आमंदनी होती थी। इसके अतिरिक्त जब अमृतसेन को अन्य लोग बुलाते थे, तब एक बार बजाने में ५०० या १००० रुपये से कम नहीं लेते थे। यह अपनी सांगीतिक प्रतिभा के कारण सारे भारत में विख्यात थे। एक घटना के अनुसार ग्वालियर के जियाजीराव की हमेशा यह ख्वाइश रही कि अमृत सेन उनके दरबार के संगीतकार रहे, लेकिन जयपुर के महाराजा ने उन्हें इन्कार कर दिया।[३४]

अमृत सेन के सितार वादन के प्रभाव से बुखार दूर हो जाना, प्रकृति में कुछ अजीब सा होना आदि बताया जाता है। अमृतसेन ने अपने निर्देशन में कई नये अंगों को सितार में डाला। उन्होंने अपनी बुद्धिमता से ख्याल एवं कई स्वयं निर्मित अंगों को राग की मसीतखानी गतों में बिना उनका स्वरूप बदले मिश्रित किया। इसका नतीजा यह हुआ कि एक नयी शैली का जन्म हुआ जिसमें प्राचीन या तानसेनीय एवं नवीन अंगों का समायोजन हुआ। अत: कलात्मक दृष्टि से वह सबसे ज्यादा अच्छी बनी। सेनीय संगीतज्ञों की लय काफी दुरुह थी। दुरुहता अमृत सेन के वादन में भी विद्यमान थी। सुदर्शनचार्य के विवरण से यह और स्पष्ट हो जाती है। उनके अनुसार जब पहली बार अमृतसेन ने मशहूर पखावज वादक कद्दू सिंह के साथ बजाया तो शुरु में उन्होंने इतना धीरे बजाया कि कद्दू सिंह उनका साथ न दे सके। तब कद्दू सिंह ने उनसे लय बढ़ाने के लिए कहा तो अमृतसेन ने अचानक ही इतना तेज बजाना शुरु कर दिया कि पखावज वादक फिर भी उनका साथ न दे सके। जब अमृत सेन ने यह देखा तो उन्होंने मध्य लय में बजाना प्रारम्भ किया तथा इतने कठिन तोड़े बजाए कि कद्दू सिंह फिर भी कई बार ताल को ही भूल गये। तब कद्दू सिंह ने अमृत सेन की काफी प्रशंसा की तथा कहा, 'कि यह पहली बार है जब मैं बेताल हो गया हूं। आपके सिवा ऐसा कोई नहीं जो मेरी लय को पीट सके।[४४] तकनीकी तौर पर अमृत सेन की गतें बहुत कठिन, लय मुश्किल एवं वादन मीड़ से भरा हुआ था[३४]। इनके सितार में तीन तूंबे होते थे तथा यह उसे गोद में रखकर बजाते थे। (चित्र सं० २३अ

अमृतसेन के शिष्यों में अमीर खां ने ही इस घराने के वादन को जीवंत बनाया। यह अमृत सेन की बहन के लड़के थे तथा इनके पिता का नाम वजीर खां एवं दादा का नाम हैदरबख्श था। यह सभी अपने समय के उच्चतम संगीतज्ञ रहे। एक शोधकार्य के अनुसार अमृत सेन निहाल सेन के पुत्र थे।[४५] इन लोगों का बीन एवं सितार, दोनों

श्रमृतसेन

चित्र संख्या 23

पर अधिकार था। महाराजा जयपुर भी इनकी कला का आदर करते थे। उपर्युक्त विवरणों से अमीर खां के सम्बन्ध में कोई सही तथ्य नहीं मिलता। एक लेख के अनुसार अमीर खां की मृत्यु सन् १९१५ में हो गयी।[४६] इस प्रकार अमीर खां अमृतसेन की अगली पीढ़ी के ही प्रतीत होते हैं। जो विद्वान यह बताते हैं कि अमीर खां निहाल सेन के पुत्र थे, उन्होंने निहाल सेन के पिता का नाम नहीं लिखा है। यहां यह ध्यान देने योग्य है कि सुदर्शनाचार्य जी न सिर्फ अमीर खां के गुरु के शिष्य थे, बल्कि उनके समकालिक भी थे। इन सब कारणों से अमीर खां को अमृत सेन की बहन का लड़का मानना ही सर्वसम्मत होगा।

अमीर खां ने सर्वप्रथम महाराजा रामसिंह के यहां नौकरी की, उसके पश्चात् वह ग्वालियर नरेश जियाजी राव के प्रश्रय में रहे। महाराजा जियाजीराव के पुत्र महाराजा माधवराव सिंधिया को आपने संगीत की शिक्षा भी दी। इस प्रकार अमीर खां को राजगुरु बनने का भी सौभाग्य प्राप्त हुआ। एक अन्य लेख के अनुसार अमीर खां मैसूर में दरबारी वादक भी थे।[४७] अमीर खां के संगीत के विषय में कहा जाता है कि अगर पूरे सेनिया घराने के संगीत को अमृत सेन एवं अमीर खां का संगीत कहा जाय तो अतिशयोक्ति नहीं होगी। संभवत: अमृत सेन की मृत्यु के बाद अमीर खां का अपना अलग ही सितार बजाने का तरीका रहा होगा। क्योंकि ग्वालियर में कई स्थानों पर अब भी अमीरखानी बाज प्रचलित है। जैसा बाज के अध्याय में बताया जा चुका है, यह वादन भी बाद में मसीतखानी बाज में ही विलीन हो गया।[४८] अमीर खां गत से पहले रागों में जोड़ बजाया करते थे। इनका जोड़, आलाप का ही विकसित रूप था। इनके वादन में सेनी घराने की सभी विशेषतायें अपने शुद्ध रूप में विद्यमान थीं।

अमीर खां के पश्चात् इस घराने में इनके पुत्र फिदा हुसैन एवं फज़ल हुसैन का नाम आता है। अमीर खां के पुत्र फिदा हुसैन एक मशहूर सितार वादक थे। यह जयपुर में नौकरी करते थे। फिदा हुसैन की शिष्य परम्परा में नवाब खां अच्छे सितार वादक हुए, यह ग्वालियर में माधव संगीत विद्यालय में सितार वादक रहे। इन्होंने अपने शिष्यों में सितार के प्रति अच्छी रुचि उत्पन्न कर सितार को लोकप्रिय बनाने में काफी सहयोग दिया।[४९]

फिदा हुसैन तथा फज़ल हुसैन के विषय में श्रीपद बन्दोपाध्याय कहते हैं कि अखिल भारतीय संगीत के प्रथम चार अधिवेशनों में प्राय: सभी कलाकार एकत्रित हुए थे तथा सभी ने अपनी कला का प्रदर्शन किया था। अंतिम अधिवेशन सन् १९२५ ई० में लखनऊ में किया गया था। उस समय जयपुर, धवलपुर आदि अनेक शहरों से कलाकार आए जिनमें सर्वप्रथम फिदा हुसैन तथा अन्त में फज़ल हुसैन का नाम दिया गया है कि इन प्रख्यात सितार वादकों ने भाग लिया तथा सभी ने आलाप, जोड़, झाला और मसीतखानी गतें बजायीं और गतों का प्रचार प्राचीन प्रथानुसार किया[५०]। इस विवरण से ऐसा प्रतीत होता है कि इस समय (सन् १९२५ ई०) तक फिदा हुसैन एवं फज़ल हुसैन जिन्दा थे। फज़ल हुसैन भी एक उच्चकोटि के सितार वादक थे। इनके बाज में बोलों का प्राधान्य था। तथा इनके वादन का क्रम पहले आलाप, जोड़, झाला फिर गतकारी था। इन बाद के कलाकारों ने रजाखानी गत का वादन, जो इनके समय प्रचार में था, उसे भी अपने बाज में शामिल कर लिया। जैसी कि फज़ल हुसैन के द्वारा बजायी तिलक कामोद की गत है। इसमें जोड़, झाले के पश्चात् रजाखानी गत ही बजायी है।[५१] फज़ल हुसैन अल्प आयु में स्वर्गवासी हो गये।

फिदा हुसैन एवं फज़ल हुसैन से ही वास्तव में सेनी घराने का अंत हो जाता है। क्योंकि कोई भी सितार वादक पुराने सितार वादकों की जगह नहीं ले पाया तथा लोग भी कठिन घराने के अनुशासन से थक कर कुछ नवीन की इच्छा करने

लगे । ख्याल की उत्पत्ति के साथ रजाखानी एवं मसीतखानी से अलग एक बाज उत्पन्न हुआ । इसका श्रेय इमदाद खां एवं इनायत खां को है (इसका विस्तृत विवरण इटावा घराने में किया जाएगा) ।

सेनी घराने के पतन का मुख्य कारण यही था कि अमीर खां किसी को आसानी से अपना शिष्य नहीं बनाते थे । जयपुर के महाराजा के प्रार्थना करने के पश्चात ही अमीर खां ने बरकतउल्ला को सिखाना प्रारम्भ किया । उन्होंने बरकतउल्ला को तालीम अवश्य दी, परन्तु उन्हें अपना असली बाज नहीं सिखाया तथा उसे अपने वंशजों के लिए छिपाकर रखा । इसकी वजह से इनका असली बाज पीढ़ी दर पीढ़ी तक नहीं पनप पाया ।

बरकतउल्ला खां अपने समय के बहुत श्रेष्ठ रजाखानी बाज के उस्ताद हुए हैं जो जयपुर के रहने वाले एक डेरेदार थे । प्रारम्भ में बरकतउल्ला खां एक मशहूर पखावज वादक थे । इनकी पत्नी भी एक बहुत बड़ी गायिका थीं । यहां तक कि महाराजा जयपुर भी उनकी कला का आदर करते थे । इसी कारणवश महाराजा के कहने के पश्चात अमीर खां ने बरकत उल्ला को सितार की तालीम दी । परन्तु ऊंचे कुल का न होने के कारण अमीर खां ने इन्हें अपने घराने की चीजें नहीं सिखायीं । परन्तु बरकत उल्ला ने अपने परिश्रम से, जो उन्हें मिला उसी को रियाज़ करके काफी प्रसिद्धि पायी । क्योंकि यह प्रारम्भ में पखावज वादक थे इसलिए इन्होंने सितार पर पखावज के कई बोलों का प्रयोग किया । इन्होंने जयपुर की महफिलों में कभी भी सेनी बाज नहीं बजाया जिससे यह सिद्ध होता है कि इन्हें सेनी बाज का कोई खास ज्ञान नहीं मिला । इनके वादन में मसीतखानी एवं रजाखानी दोनों बाजों का सम्मिश्रण मिलता है । इनकी वादन गत इस विशेषता के कारण ही परवर्ती सभी सितार वादकों ने

मसीतखानी एवं रजाखानी दोनों ही शैलियों को अपनाया।[५२] इनके रिकार्ड सुनने से ज्ञात होता है कि यह सितार पर आलाप नहीं बजाते थे। यह मुख्यत: मैसूर एवं पटियाला के दरबारों में ही रहे।[५३] सन् १९२०-१९३० में यह अपनी चरम सीमा की ख्याति प्राप्त कर चुके थे।[५४] श्रीपाद कुला

अमीर खां के एक अन्य शिष्य का नाम पादबुवा था जो ग्वालियर में रहे।[५५]

बरकत उल्ला से आशिक अली खां ने जो पहले गायक थे शिक्षा प्राप्त की। इन्होंने भी अपने गुरु के समान अपना प्रमुख संगीत छोड़कर सितार वाद्य को अपनाया। बरकत उल्ला ने आशिक अली खां को काफी मेहनत से सिखाया। इन्होंने सितार पर पूर्णत: गायन का प्रभाव उत्पन्न किया। इनके वादन में आलापचारी का बाहुल्य था। जिन्होंने आशिक अली का वादन सुना है, उनका कहना है कि यह कभी-कभी इतना आलाप बजाते थे, कि सुनने वालों का मन भर जाता था।[५४] इन्होंने चार शिष्यों को संगीत की शिक्षा दी जिनमें से दो शिष्यों को गायन तथा दो शिष्यों को वादन सिखाया। इनके शिष्यों में अनवरी बेगम तथा रसूलन बाई दो शिष्याएं थीं जिन्हें गायन की शिक्षा दी गयी तथा गोपीनाथ गोस्वामी एवं पुत्र मुश्ताक अली खां को सितार वादन की शिक्षा दी गयी। गोपीनाथ अब वायलिन बजाते हैं।[५६] आशिक अली खां के शिष्यों में मुश्ताक अली खां ने ही सबसे अधिक ख्याति प्राप्त की जो बनारस वासी थे। परन्तु जब मुश्ताक अली १६ वर्ष की आयु के थे तभी इनके पिता आशिक अली खां दिवंगत हो गये। अत: इन्हें अपने पिता से पूर्ण तालीम नहीं मिल सकी। इनकी अधिक तालीम कलकत्ते के अमीर खां, सरोदिये के पास हुई। इनके पश्चात् छोटे खां सारंगी तथा अनाथ बोस तबले वाले की संगति में भी बहुत दिन रहे। वैसे मुख्यत: रजाखानी बाज ही बजाते थे परन्तु बदलते हुए युग को देखकर ही संभवत:

अब इन्होंने मसीतखानी बाज भी बजाना प्रारम्भ कर दिया है । इनके शिष्यों में अरुण कुमार चट्टोपाध्याय, अशोक घोष, देवव्रत चौधरी, धीरेन्द्र कान्त लाहिड़ी चौधुरी आदि हैं ।[49] इनके शिष्यों में से कुछ ने सितार-वादन में काफी ख्याति अर्जित की है यथा फाटिक बाजी एवं देवव्रत चौधरी । इनके वादन में बहुत सफाई है । अगर इनकी वादन शैली पर ध्यान दिया जाय तो इनकी वादन शैली सेनी - वादकों से बिल्कुल नहीं मिलती । प्रारम्भ में मसीत खां ध्रुपद पर आधारित कर अपने तरीके से बजाते थे, बहादुर खां ने उसमें बीन के तोड़े एवं कुछ जटिल प्रयोग भी शामिल कर दिये, रहीम सेन ने वीणा एवं ध्रुपद के साथ ही धमार गायकी एवं कुछ ख्याल के अंगों को भी सितार पर बजाया, अमृत सेन ने बीन, ध्रुपद, धमार के साथ ही ख्याल को भी अपनी बुद्धिमत्ता से सितार पर बजाया, अमीर खां ने बीन, ध्रुपद, धमार, ख्याल के साथ ही अपने वादन में कुछ द्रुत लय की गतों का समावेश किया जो कि रजा-खानी बाज का प्रभाव थीं । इनके बाद इस घराने के अंतिम चिराग फिदा हुसैन एवं फज़ल हुसैन थे जिन्होंने अपने वादन में अपनी वंशगत परम्पराओं का पालन करने के साथ ही रजाखानी गतों का भी प्रयोग किया । यहीं से सेनिया घराने का अंत हो जाता है ।

बरकत उल्ला खां, एक सेनिया घराने के वादक से सीखने के पश्चात भी, इस घराने की प्रमुख विशेषताओं को नीची जाति का होने के कारण नहीं सीख सके । इन्हीं के शिष्य आशिक अली खां ने आलापचारी पर बहुत ध्यान दिया तथा पूरब बाज ही बजाया जबकि मुश्ताक अली खां ने रजाखानी बाज के साथ ही मसीतखानी बाज एवं फालों भी बजाया । इस प्रकार तुलना करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि इन्होंने सेनी घराने के कलाकारों से सीखा अवश्य परन्तु सेनी बाज न सीखकर अन्य बाज ही

सीखा जैसे कि प्रारम्भ में बीनकारों द्वारा अपने शिष्यों को बीन न सिखाकर सितार वादन की ही शिक्षा दी गयी परन्तु उन्हें बीनकार घराने का कह सकते हैं जबकि उनका बाज बिल्कुल भिन्न था यही घटना अमीर खां एवं उनके शिष्यों के साथ घटी। इस घराने को चार्ट सं० २ में दर्शित किया गया है।

इन्दौर घराना

इस घराने में देश के बहुत विख्यात बीनकार हुए जैसे उमराव खां, बन्देअली खां, मुनोवर खां, मुशर्रफ खां इत्यादि। इन सब बीनकारों में बन्देअली खां सबसे अधिक विख्यात थे। बन्दे अली खां का जन्म सन् १८२६ ई० में किराना घराने के एक संगीतमय परिवार में हुआ। इनके पिता का नाम सादिक अली था जो कि एक अप्रचलित बीनकार थे।[५८,५९] इन्होंने बीन की शिक्षा किससे प्राप्त की ? इस विषय में काफी मतभेद हैं। कुछ उल्लेखों के अनुसार वह बनारस के निर्मल सिंह के शिष्य पुत्र थे किन्तु निर्मल सिंह को बन्दे अली खां का गुरु बनने के लिए अपने समय से काफी पहले पैदा होना पड़ेगा। कुछ लोग इन्हें उमराव खां का शिष्य भी बताते हैं। परन्तु बन्दे अली खां बनारस में रहे, ऐसा कोई प्रमाण नहीं है। एक अन्य मत के अनुसार बन्दे अली खां ने अपने मामा बहराम खां के पास जयपुर में रहकर शिक्षा ग्रहण की। बन्दे अली खां एक सूफी की तरह रियाज किया करते थे। कुछ लोग उन्हें ख्यालसंगीत के साथ भी जोड़ देते हैं। उनकी शादी हद्दू खां (मशहूर ख्याल गायक) की लड़की के साथ हुई। बन्दे अली खां ने बीन के मुख्य वादन को न बदलते हुए ख्याल के अंगों का बीन में समावेश किया। बन्दे अली खां का संगीत उस समय का तथा पुरानी कला का एक अच्छा मिश्रण था। बन्दे अली खां पहले जयपुर में रहे लेकिन वह जल्द ही नियाजी

चार्ट- 2

दिल्ली घराना

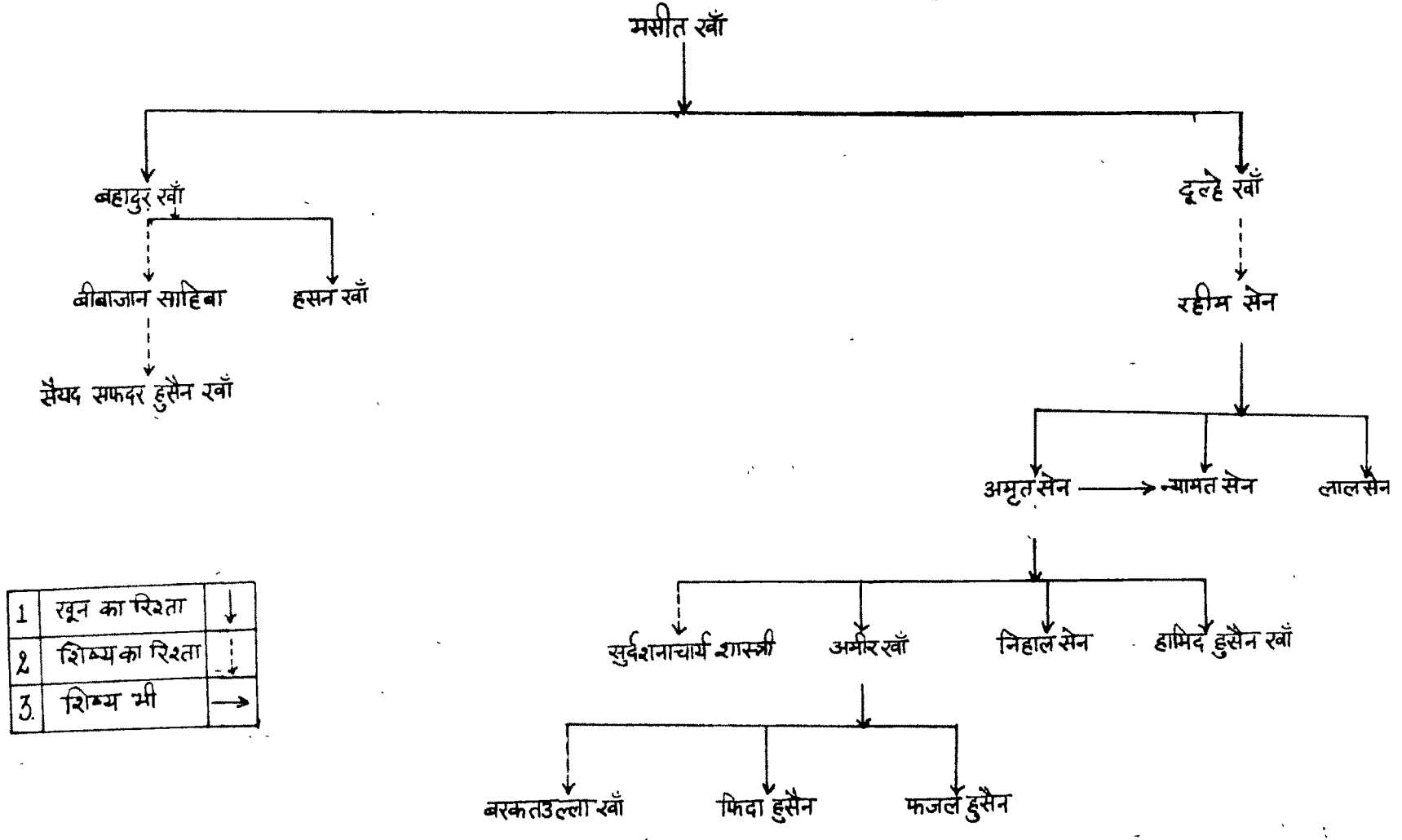

1	खून का रिश्ता	↓
2	शिष्य का रिश्ता	⇣
3.	शिष्य भी	→

राव के ग्वालियर दरबार में चले गये । उस समय टुकोजीराव द्वितीय का राज्य काफी फैल रहा था, इसी कारण सन् १८६० ई० के आसपास इन्दौर दरबार ने बन्दे अली खां को आकर्षित किया । यहां पर इन्हें काफी अच्छा वातावरण मिला । यहां वे लगभग २० वर्षों तक रहे । इसलिये उनके मुख्य शिष्य इन्दौर या उसके आसपास से दरबारों, जैसे -- जावरा या देवास से सम्बन्ध रखते थे । टुकोजीराव के राज्य काल में बन्दे अली खां ने, कुछ मतभेद हो जाने के कारण इन्दौर छोड़ दिया, तथा पूना चले गये । यहां उनका घराना शिवाजी राव होलकर के दरबार में पनपता रहा । यह भी संगीत के प्रेमी थे । हालांकि उन्हें सन् १९३० में अव्यवस्थित प्रशासन के कारण निकाल दिया गया । पूना में सन् १८९० में इनका देहावसान हो गया ।[५८, ५९]

बन्दे अली खां के शिष्यों में वहीद खां एक मुख्य बीनकार हुए[६०] । इनके दो भाई और थे जिनका नाम मुनोवर खां और नज़ीर खां था । मुनोवर खां भी एक अच्छे बीनकार थे तथा यह ग्वालियर के महाराजा के पास नौकर थे । नज़ीर खां गायक थे तथा यह भी ग्वालियर के राजा के दरबार में रहते थे । मुनोवर खां की मृत्यु सन् १९३० के आसपास ५५-६० वर्षों में हो गयी ।[६१] वहीद खां शिवाजी राव होल्कर के दरबार में पूना में सन् १८८६-१९०३ ई० तक रहे । इसके बाद वहीद खां टुकोजीराव तृतीय के दरबार में भी रहे ।[६२] वहीद खां ~~के~~ उनके लड़के लतीफ खां की शादी इमदाद खां की पोती से हुई । इनके विभिन्न राजाओं के दरबार में होने से यह अनुमान लगाया जा सकता है कि वहीद खां सन् १८५५ ई० के आसपास पैदा हुए होंगे तथा उनकी मृत्यु जो कि एक कथन के अनुसार अजमेर में हृदयगति रुक जाने के कारण हुई, सन् १९२५ ई० के आसपास हुई । वहीद खां के पुत्रों के नाम

मज़ीद खां, लतीफ खां एवं गुलाम कादर है ।[६१] मज़ीद खां ने सितार को अपनाया जबकि लतीफ खां एक अच्छे बीनकार हुए । लतीफ खां पूना में टुकोजीराव तृतीय (सन् १६०३-१६२५ ई०) के दरबार में एक बीनकार के रूप में रहे ।[५७] उनकी उच्चकोटि की कलाकृति का पता इस तथ्य से लगता है कि टुकोजीराव तृतीय के बाद के राजा यशवंत राव ने भी उन्हें अपने दरबार में एक मुख्य बीनकार की हैसियत से रखा। मौखिक उल्लेखों के अनुसार इनकी मृत्यु सन् १६३५ ई० में हुई ।[६१] लतीफ खां की मृत्यु के बाद उनके शिष्य उस्ताद उस्मान खां, बीनकार; यशवंत राव के दरबार में रहे ।[६२] सन् १६४७ ई० में स्वतंत्रता के बाद इन्हें इन्दौर को छोड़ना पड़ा तथा यह बम्बई चले गये । सन् १६५० ई० में यह अहमदाबाद में आये तथा सन् १६६० ई० में इन्दौर के महाराजा के बुलाने पर यह इन्दौर चले गये । आजकल यह इन्दौर में हैं ।[६२] लतीफ खां की एक शादी उस्मान खां की बहन से हुई तथा दूसरी शादी इमदाद खां की पोती से हुई ।[६२] उस्मान खां के एक भाई गुलाम हुसैन खां अहमदाबाद में रहते हैं । यह सितार बजाते हैं परन्तु स्वर की शुद्धता का इनके वादन में पर्याप्त प्रभाव है । इनके पुत्र भी सितार बजाते हैं, परन्तु उनके वादन में भी कोई विशेषता नहीं है ।

वहीद खां, बीनकार के सबसे बड़े पुत्र, मजीद खां सितार वादक थे । इन्होंने अपने पिता से ही सितार की शिक्षा ली । इनकी शादी इमदाद खां की पोती से हुई । मजीद खां के एक शागिर्द का नाम गुलाम रसूल खां है । यह सितार बजाते हैं तथा इन्दौर निवासी हैं ।[६२] मजीद खां के दूसरे शिष्य मुहम्मद खां थे जिन्हें इनके पिता वहीद खां से भी शिक्षा ग्रहण की ।[५६,५७] यह बीन एवं सितार दोनों को ही बहुत शुद्धता से बजाते थे तथा यह आलापचारी में प्रवीण थे ।[६१] इनकी मृत्यु सन् १६६७ ई० में हुई, उस समय यह करीब ७० वर्ष के थे ।[६३] कुछ उल्लेखों के अनुसार इन्हों ने

विलायत खां को सितार की शिक्षा दी ।[६४] इनके पुत्र रहीस खां आज के उच्च कोटि के कलाकार हैं ।

रहीस खां विलायत खां की बहन के लड़के हैं । इनका जन्म सन् १९३८ ई० में इन्दौर में हुआ । इनकी सितार की शिक्षा पूर्णत: वालिद मोहम्मद खां के द्वारा हुई ।[६४] इनके बजाने की शैली से पता चलता है कि यह द्रुत तकनीक से बजाना पसंद करते हैं । सितार के वादन के बाद यह अपने कार्यक्रम में गजलें भी गाते हैं जिससे श्रोताओं की सितार में रुचि बढ़े ।[६४] यह सितार बजाने में वास्तव में सिद्धहस्त हैं । राग का रूप इनके वादन में बहुत ही सुन्दरता से निखरता है ।

वहीद खां के तीसरे पुत्र गुलाम कादर खां लगभग ७० वर्ष की आयु के हैं । इनका वादन भी बहुत शुद्ध है ।[६१]

बन्दे अली खां के शिष्यों में ही मुराद खां बीनकार का भी प्रमुख स्थान है ।[६०] एक उल्लेख के अनुसार मुराद खां जैसा बीनकार पिछले सौ सालों से नहीं हुआ ।[६५] जावरा के महाराज मोहम्मद स्माइल खां (सन् १८७४ ई० से १८९५ ई०) के अनुरोध पर यह जावरा दरबार में आ गए । जहां पर मेहताब खां बीनकार (यह भी बन्दे अली खां के शिष्य थे) (रजब अली खां के पुत्र थे) यह इसी दरबार में वादक थे ।[६२] बाद में मुराद खां राजिस्थान दरबार में गये । इनकी मृत्यु सन् १९२७ ई० में हुई ।[६०] गुलाम हुसैन खां के ताऊ (पिता के बड़े भाई) की लड़की की मुराद खां से शादी हुई ।[६१] एक मत के अनुसार मुशर्रफ खां बीनकार मुराद खां के शिष्य थे ।[६६] दोनों ने अनुमंद्र षड्ज के तार का प्रयोग किया । मुशर्रफ खां का अहमदाबाद में काफी आना जाना लगा रहता था । इनके कुछ शिष्य भी अहमदाबाद में मिलते हैं यथा मकरन्द बादशाह एवं गीता बेन साराभाई आदि ।[६६] मुख्यत: मुशर्रफ खां ग्वालियर में ही रहे ।[६१] मुराद खां के सबसे विख्यात शिष्य बाबू खां थे, यह इंदौर

के निवासी थे तथा बीन, सितार एवं सुरबहार बहुत अच्छा बजाते थे।[६२] बीसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में यह पश्चिमी भारत के उच्चकोटि के सितार वादक रहे। इनकी मृत्यु सन् १९३९ ई० में हुई।[६७]

बाबू खां के वर्तमान शिष्यों में अब्दुल हलीम जाफर खां का नाम अग्रणीय है। इनका जन्म सन् १९२७ ई० में हुआ। इनके पिता का नाम जाफर खां था। शुरु के दो सालों में इन्होंने बाबू खां से शिक्षा ली, उसके पश्चात् महबूब खां से सितार की तालीम ली। हलीम जाफर खां जावरा के निवासी हैं।[६७] इनके सितार वादन में प्राचीन एवं आधुनिक वादन शैलियों का संगम दृष्टिगत होता है जिसके कारण इनकी वादन शैली में एक प्रकार की अभिनवता का उदय हो गया है। यह बीनकारी अंग से बजाते हैं। इनकी रजाखानी एवं मसीतखानी गतें बड़ी कुशल एवं परिमार्जित होती हैं। द्रुत वादन एवं उसकी शुद्धता इनके वादन का प्रमुख अंग है। इन्होंने जाफरखानी बाज का निर्माण किया है, जिसे बाज वाले अध्याय में वर्णित किया जा चुका है।

बन्दे अली खां के शिष्यों में रहमत खां का एक महत्वपूर्ण स्थान है। इनका जन्म सन् १८५४ ई० के लगभग हुआ। उस्मान खां के अनुसार इन्होंने पहले बीन वादन की शिक्षा प्राप्त की, फिर सितार बजाना प्रारम्भ किया। बीन पर जो गहराई सीखी थी वह सितार पर बजाना मुश्किल था, अत: सीमित सितार में आलाप आदि का इंतजाम किया। रहमत खां ने आलाप का दायरा विकसित करने के लिये खरज पंचम का तार भी लगाया।[६८] रहमत खां ने अपना काफी समय मिराज में ही बिताया था।

रहमत खां की अब्दुल करीम खां के साथ जोड़ी थी। रहमत खां का एक रिकार्ड संगीत नाटक अकादमी में भी उपलब्ध है जिस पर इनका नाम रत्न प्रो०रहीमत

खां लिखा है। इसमें बजायी गयी राग जोगिया एवं ललित को सुनने से स्पष्ट पता चलता है कि उन्होंने अन्य तारों पर बहुत सुन्दर ढंग से आलाप किया है।[६६] इस रिकार्ड से यह सिद्ध हो जाता है कि जो विद्वान इन तारों को रविशंकर या अल्ला-उदीन खां द्वारा सर्वप्रथम लगाया हुआ मानते हैं, वह गलत है। रहमत खां के वादन में काफी सफाई मिलती है। अलंकारिक तोड़े एवं तिहाइयों का सुन्दर प्रयोग मिलता है। यथा राग जोगिया में मप मप स - - ३ आदि।[६६] रहमत खां के तीन पुत्रों का नाम करीम खां, गुलाम दस्तगी और गुलाम कादर है।[६८] करीम खां सितार वादन के पुत्रों के नाम हैं -- बाले खां, महमूद खां, हमीद खां, रहमत खां तथा उस्मान खां। उस्मान खां ने अपने पिता द्वारा बजायी सितार वादन की प्रणाली को काफी सुन्दर ढंग से प्रस्तुत करने में कुशलता प्राप्त की है। यह पूना में रहते हैं। इनके बाकी परिवारीसदस्य धारवाड़ व बम्बई में रहते हैं। इस प्रकार इन्दौर घराने पर सम्मिलित रूप से दृष्टि डालने से जो स्थिति का मान होता है, उसे चार्ट ३ में दिखाया गया है।

गुलाम रजा

जहां दिल्ली में मसीत खां द्वारा सितार का विकास किया गया, वहीं मसीत खां के बाद पूरब में गुलाम रजा द्वारा सितार के विकास में यथेष्ट सहयोग दिया गया। यही कारण है कि आज तक सितार के विकास में यह दो नाम ही अग्रणीय हैं। गुलाम रजा ने लखनऊ के नवाबों के लिए इस बाज का निर्माण किया था। मुहम्मद करम इमाम कहते हैं[७०] कि गुलाम रजा को वाजिद अली शाह के दरबार में इतना सम्मान मिला कि नवाब ने घारियों को बुद्धजीवियों की नौकरी दे दी।

चार्ट - 3

इन्दौर घराना

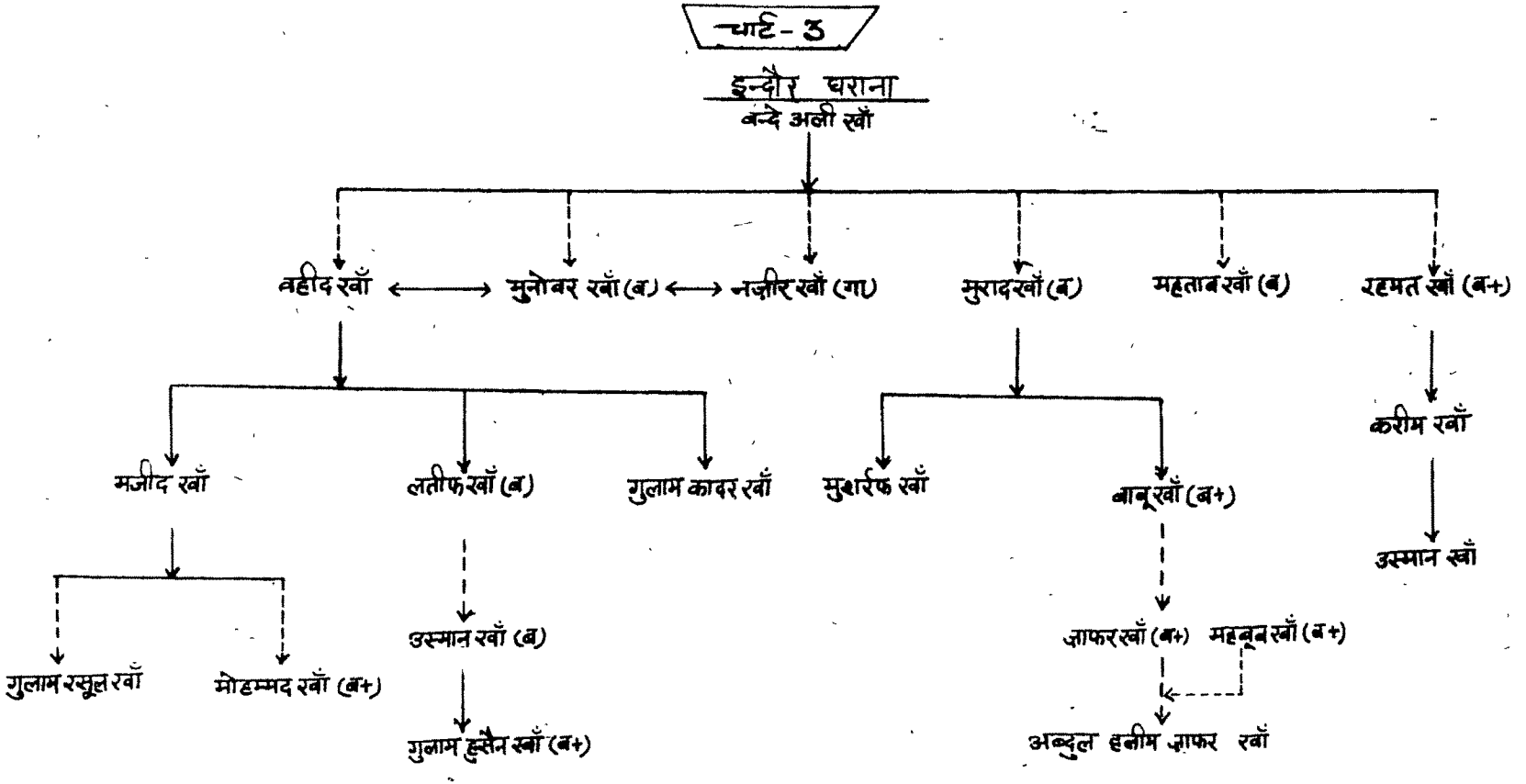

1	खून का रिश्ता	↓
2.	शिष्य का रिश्ता	⇣
3	भाई का रिश्ता	↔
4	बीन	ब
5.	गायक	गा
6.	सितार भी	+

राजुद्दौला जो एक धारी था, उसे अबाई का खिताब दिया गया । जब तक वाजिद अली शाह को गद्दी से नहीं उतारा तब तक वह छोटे राजकुंवर पारिस के पारिखाने में अध्यापक रहे ।[७१] मोहम्मद करम इमाम के अनुसार गुलाम रजा के वादन में कोई ठोक या फाला नहीं था, नाही एक दो जाहों के अलावा उसमें विस्तार करने का क्षेत्र ही था । उस्ताद लोग इस बाज को नहीं मानते थे तथा बुद्धिजीवी इस बाज को सुनने में लज्जा महसूस करते थे । गुलाम रजा ने इस बाज का निर्माण लखनऊ के नवाबों के लिए किया था । एक अन्य उल्लेख के अनुसार यह एक हल्की मूसीक़ी थी जिसके द्वारा राग को बजाने के बाद कुछ विभिन्नता आ सकती थी । परन्तु मोहम्मद करम इमाम कहते हैं कि 'मैंने गुलाम रजा के सिवाय और किसी को भी इसमें प्रवीण नहीं देखा । उसकी गतें जो तीनताल में बंधी हुई थीं, किसी भी रागिनी या धुन पर नहीं बनायी गयी थीं । उन्हें ठुमरी के आधार पर रचा गया था । मैंने उन्हें कभी भी पूर्ण तथा ढंग से बनाई हुई नहीं देखा ।'[७२] लेकिन इनके बाद के लोगों ने इसे अनुकृत नहीं किया । जैसाकि लखनऊ घराने के सम्बन्ध में पढ़ने से भी ज्ञात होता है कि लखनऊ के वादकों पर इस शैली का प्रभाव अवश्य है, परन्तु गुलाम रजा के किसी शिष्य का उल्लेख नहीं मिलता । एक विद्वान के अनुसार वह कोई खास संगीतज्ञ नहीं था । परन्तु राजा की तरफदारी से ही उसे काफी ख्याति मिली ।[७३]

गुलाम रजा के पारिवारिक लोगों का वर्णन बहुत कम मिलता है । एक उल्लेख के अनुसार गुलाम रजा रामपुर के निवासी थे । इनके पिता का नाम नत्थू खां था, जिन्हें नजीबुद्दौला का खिताब मिला था ।[७४] नत्थू खां भी एक संगीतकार थे परन्तु उनका संगीत, गायन था या वादन ? आदि के विषय में कोई उल्लेख नहीं मिलता । नत्थू खां को सन् १८२२-१८४० ई० तक रामपुर के नवाब अहमद अली खां के पास नौकरी की । सन् १८५० ई० में इन्हें गुलाम रजा के साथ अवध से निकाल

दिया गया । वाजिद अली शाह गुलाम रजा की बहन पर काफी महरबान थे । गुलाम रज़ा के बहनोई का नाम दाँमन खां बताया गया है वह भी एक संगीतकार थे । इस प्रकार गुलाम रजा वाजिद अली शाह के दरबार में काफी महत्वपूर्ण व्यक्ति थे । गुलाम रजा के पश्चात् संगीतज्ञों ने समय की आवश्यकतानुसार इस बाज को परिवर्तित करके अपनाया । जिसका उल्लेख आगे किया जा रहा है ।

रामपुर घराना

अठारहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में बनारस दरबार में जीवनशाह तथा प्यार खां नामक दो भाई अपने समय के प्रख्यात बीनकारों में से थे । इसी दरबार में जीवन शाह के पुत्र निर्मलशाह बीनकार को भी बताया जाता है । निर्मल शाह के शिष्य उमराव खां उन्नीसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में बनारस के एक प्रसिद्ध बीनकार थे ।[७५] जिनके शिष्यों के प्रयासों के फलस्वरूप ही ध्रुपद का आलाप आजतक सितार पर कायम है । उमराव खां के दो पुत्र थे जिनका नाम अमीर खां व रहीम खां था । यह रामपुर दरबार के प्रसिद्ध बीनकार रहे । रहीम खां के शिष्य रहीम बेग ने उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में सितार की दो महत्वपूर्ण पुस्तकें नग्माए सितार एवं तहसील ए सितार लिखीं ।[७६] अमीर खां एवं रहीम खां के रामपुर में आने के साथ ही रामपुर घराने की नींव डाली और रामपुर संगीत का एक मुख्य केन्द्र बन गया । अमीर खां के शिष्यों में हैदर अली खां भी थे । हैदर अली खां के शिष्यों में वाजिद अली शाह के वज़ीर नवाब अली नकी खां सितार पर द्रुत गतों की बंदिशों के लिए प्रसिद्ध थे ।[७७] बीसवीं शताब्दी के प्रसिद्ध गायक तथा वादक वज़ीर खां, अमीर खां के पुत्र थे । इन्होंने अपने पिता से ध्रुपद एवं वीणा की पूर्ण शिक्षा प्राप्त की । पिता की मृत्यु के

उपरान्त विलसी के जमींदार हैदरअली खां के शिष्य होकर उनसे शिक्षा ग्रहण की। वज़ीर खां रामपुर के दरबार में रहे। यह नवाब हामिद अली खां के गुरु भी रहे। यह कंठ संगीत में ध्रुपद गायन एवं यंत्र संगीत में वीणा एवं रबाब के वादन में सिद्धहस्त थे। इनके पौत्र उ० दबीर खां एक कुशल बीनकार एवं ध्रुपद के ज्ञाता थे। वज़ीर खां के शिष्यों में ग्वालियर राज्य के हाफिज़ अली खां, सरोदिए तथा मेहर राज्य के अल्लाउद्दीन खां सरोदिए ही अग्रगण्य हैं। तानसेन घराने के यह ही ख्यातिसिद्ध भक्त साधक रहे।[७७]

अल्लाउद्दीन खां के पुत्र अलीअकबर खां का जन्म सन् १९२० ई० में हुआ। इन्होंने अपने पिता से सरोद की शिक्षा ली। इनका सरोद वादन आज भारतवर्ष का ही नहीं वरन विश्व का भी प्रिय हो गया है। इनके पुत्र आशीष खां तथा ध्यानेष खां सरोद वादन में प्रवीण हैं। इनकी बहन अन्नपूर्णा भी एक अच्छी सुरबहारवादिका हैं यह भी अपने पिता के समान अनेक वाद्यों को बजाने में माहिर हैं। यह अपना वादन धनोपार्जन के लिए न करके ईश्वरोपासना के लिये ही करती हैं। इनके वादन को सुनकर यह अनुभव होता है कि इनका स्वरलगाव बहुत ही पक्का है, आलाप के पश्चात सुरबहार जैसे वाद्य पर बजायी गयी तानें वास्तव में चमत्कृत कर देने वाली हैं।[७८]

अल्लाउद्दीन खां के शिष्यों में रविशंकर आज के प्रख्यात सितार वादक हैं जिनके सितार वादन से भारतीय संगीत प्रेमी ही नहीं वरन विदेशी संगीतप्रेमी भी द्रवित हुए बिना नहीं रहते। इनका जन्म काशी में सन् १९२० ई० में हुआ। यह बाल्यावस्था से ही अपने भ्राता उदयशंकर के साथ नर्तक दल में प्रविष्ट हो गए। सन् १९३८ ई० में यह अल्लाउद्दीन खां के सम्पर्क में आए तथा इनके बड़े भाई उदयशंकर द्वारा अल्लाउद्दीन खां से इन्हें शिक्षा देने का अनुरोध करने पर इन्होंने अल्लाउद्दीन

खां से मैहर में रहकर शिक्षा प्राप्त की ।[७९] रविशंकर ने अपने सितार वादन में ध्रुपद आलाप, जोड़ तथा वीणा के क्लिष्ट अंगों को बजाया । इनके द्वारा सितार पर व्यवस्थित आलाप वादन करने से सुरबहार का लोप हो गया । इनके सितार - वादन में एक और नवीनता आयी, वह यह कि इन्होंने तीनताल के साथ ही अन्य तालें यथा दादरा, झपताल, धमार, एकताल आदि में भी वादन किया जो इनसे पहले नहीं होता था ।

अल्लाउद्दीन खां के विशिष्ट शिष्यों में निखिल बैनर्जी का नाम उल्लेखनीय है । इनका जन्म कलकत्ते में सन् १९३१ ई० में हुआ । इनके पिता का नाम जितेन्द्र नाथ बैनर्जी था, जिन्होंने सितार की शिक्षा आशिक अली खां से प्राप्त की थी ।[८०] अल्लाउद्दीन खां ने जहां रविशंकर को बीनकारी ढंग से शिक्षा दी, वहीं निखिल बैनर्जी को रबाबी अंग से सिखाया । निखिल बैनर्जी ने अली अकबर खां से भी शिक्षा ग्रहण की । इन दोनों के सितार वादन से अल्लाउद्दीन खां के बृहत ज्ञान का भास होता है । इनके सितार वादन में मिठास, सौन्दर्यात्मकता तथा क्रमबद्धता पूर्ण रूप से भरी हुई है । यह भी ध्रुपद अंग से आलाप बजाते हैं । मुख्यत: रामपुर धराने का यहीं अंत हो जाता है । इस धराने के कलाकारों को चार्ट ४ में दिखाया गया है ।

गुलाम मोहम्मद ने उमराव खां बीनकार से वीणा सीखने की इच्छा व्यक्त की, अत: उमराव खां ने एक बड़ा सितार जिस पर तरबें लगी हुई थीं, वीणा के ढंग से गुलाम मोहम्मद को आलाप, जोड़ और झाले का शिक्षण दिया ।[८१] गुलाम मोहम्मद के खानदान के विषय में लिखित उल्लेखों से कुछ खास ज्ञात नहीं होता । परंतु यह सितार संगीत के साहित्य में एक मुख्य शैली के निर्माता थे । यह पहले लखनऊ के राजा वाजिद अली शाह के दरबार में नियुक्त थे । बाद में बलरामपुर के राजा

चार्ट 4

रामपुर घराना

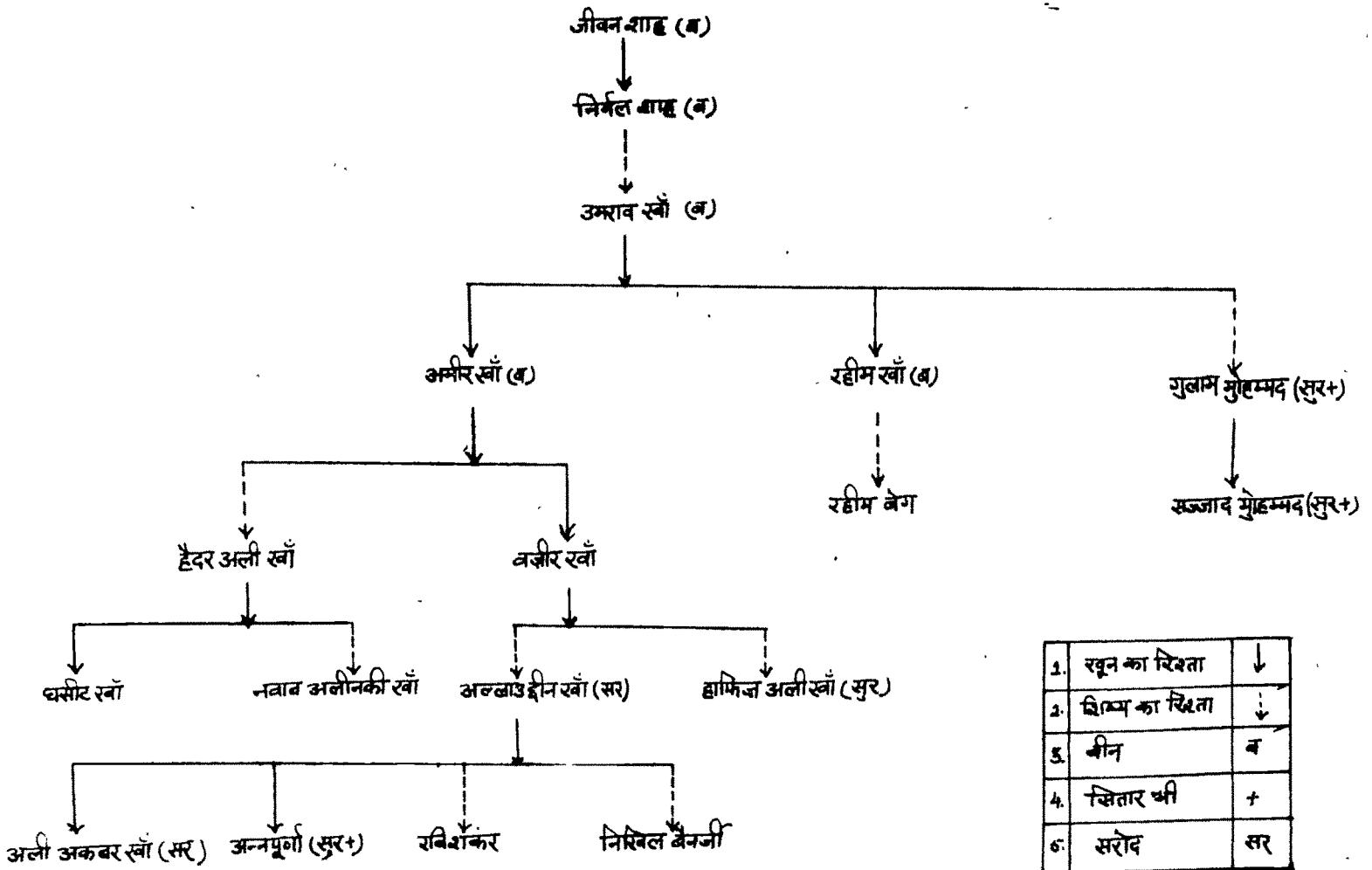

1.	खून का रिश्ता	↓
2.	शिष्य का रिश्ता	⇣
3.	बीन	ब
4.	सितार भी	+
5.	सरोद	सर
6.	सुरबहार	सुर

दुर्विजय सिंह के दरबार में रहे ।[८२] इन्होंने सितार पर बांदा के नवाब हशमतजंग व उनके समय के बाकी कलाकारों जैसा ही पूरब बाज बजायो परन्तु बड़े सितार पर (सुरबहार) पूर्ण ध्रुपद संगीत सर्वप्रथम इन्होंने ही बजाया । इन्हीं की वजह से पूरा बीन आलाप आधुनिक सितार की मुख्य शैली बना । मोहम्मद करम इमाम के अनुसार[८३], सितार के बजाने में गुलाम मोहम्मद खां ने,जो बांदा के निवासी हैं, विशेषता प्राप्त कर ली है । उनकी ठोंक इतनी साफ एवं संतुलित है कि उमराव खां बीनकार के अलावा मैंने अभी तक किसी भी बीनकार या रबाबियों को उनके बराबर नहीं पाया । उनका सितार बीन या रबाब से किसी भी दशा में कम नहीं था । उस समय के उस्तादों के अनुसार पूरे भारत में गुलाम मोहम्मद का स्थान कोई अन्य कलाकार नहीं प्राप्त कर सकता था । इस कथन से यह स्पष्ट हो जाता है कि ध्रुपद अंग का पूर्ण आलाप सर्व-प्रथम सुरबहार पर इन्हीं ने बजाया । गुलाम मोहम्मद के सितार वादन के सम्बन्ध में उनके शिष्यों से ज्ञात होता है जो सब सुरबहार पर पूरा ध्रुपद आलाप तथा सितार पर द्रुत पूर्वी रचनाएं बजाने के लिये प्रसिद्ध थे ।

मसीतखानी बाज में आलाप का कोई स्थान नहीं होता था क्योंकि मसीतखानी गत तोड़े स्वयं ही राग की बढ़त व बीन आलाप से युक्त होते थे परन्तु पूरब बाज की गतों में आलाप अलग होता था । इसी कारण गुलाम मोहम्मद द्वारा सिखाए गए ध्रुपदियों ने आलाप के अंग को पृथक रूप से सुरबहार पर ही बजाया । गुलाम मोहम्मद द्वारा बजाए गए सुरबहार का एक चित्र रहीम बेग ने नग्माए सितार में भी दिया है । सुरबहार में दूसरा तूंबा एवं तरबें भी लगी हुई हैं। इसका मुख्य तूंबा स्टैंड सहित है तथा कुछ अजीब आकृति का है । यह वाद्य सितार से बड़ा है । गुलाम मोहम्मद की मृत्यु गोंडा, बलरामपुर में हुई ।[८४]

सज्जाद मुहम्मद खां गुलाम मुहम्मद के शिष्य थे । लिखित उल्लेखों में इन्हें गुलाम मुहम्मद का पुत्र बताया गया है ।[८१] एक अन्य मत के अनुसार सज्जाद मुहम्मद गुलाम मुहम्मद के पोते थे ।[८५] परन्तु इस मत को नहीं माना जा सकता । क्योंकि मौखिक उल्लेखों में भी गुलाम मुहम्मद के सुरबहार वादन के बाद सज्जाद मुहम्मद का नाम ही आता है तथा करम इमाम ने भी सज्जाद मुहम्मद को गुलाम मुहम्मद का पुत्र ही बताया है[८३] क्योंकि करम इमाम ने गुलाम मुहम्मद व सज्जाद मुहम्मद के काल को अपनी आंखों से देखा है इसी कारणवश इनका कथन सत्यता के समीप माना जासकता है । सज्जाद मुहम्मद भी सितार पर पूरब बाज तथा सुरबहार पर पूरा ध्रुपद आलाप बजाते थे । यह कलकत्ते में जितेन्द्र मोहन टैगोर के दरबार में रहे । इन्हीं के समय से बंगाल भारत के श्रेष्ठ गुणियों का निवास स्थान बना । जिसके फलस्वरूप वहां के लोगों में ध्रुपद तथा धमार का गायन और बहुविध वाद्यों का प्रचार हुआ । इनके शिष्यों में इमदाद खां का स्थान महत्वपूर्ण है ।[८१] इनका वर्णन इटावा घराने के उल्लेख में किया गया है ।

इटावा घराना

-- इस घराने के सर्वप्रथम कलाकार इमदाद खां थे । इनके पिता का नाम साहबदाद खां था जिन्हें सारंगी तथा जलतरंग का अच्छा अभ्यास था । इनके घराने का मुख्य अंग सारंगी ही था (कंठ संगीत के अनुकरण पर)। इमदाद खां को प्रारम्भिक शिक्षा अपने पिता से ही मिली । पिता की मृत्यु के पश्चात इमदाद खां ने इन्दौर घराने के रजब अली साहब का शिष्यत्व ग्रहण किया ।[८६] रजब अली एक अच्छे गायक थे । वी०के० रायचौधरी के अनुसार[८७] इमदाद खां ने अपनी लड़की बेगम बीबी की दो कन्याओं की शादी मशहूर बीनकार (इन्दौर घराने के) मज़ीद खां एवं लतीफ खां के साथ कर दी तथा इन्हीं के अनुसार इमदाद खां ने बन्दे अली खां से भी शिक्षा ली ।

इस विवरण में वी०के० रायचौधरी का मत भ्रमित प्रतीत होता है । यह शायद मुराद खां के बड़े भाई इमदाद खां गायक[८६] से इन इमदाद खां को जोड़ रहे हैं । अगर इन इमदाद खां ने बन्दे अली खां से शिक्षा ली होती, तो इनके वादन में भी बीन का अंग होता, जो कि नहीं है । क्योंकि इन्होंने कंठ संगीत का अनुकरण ही किया, इसलिए इन्हें इन्दौर घराने का नहीं कहा जा सकता । हालांकि इनकी शिक्षा इन्दौर घराने वालों से भी हुई । जिस प्रकार इन्होंने अपनी अलग शैली बनायी तथा इनकी कम से कम तीन पीढ़ियों ने उसी शैली का विकास किया, एवं बजाया, यही कारण है कि इनकी वादन शैली बजाने वालों को इटावा घरानें का कहा जाता है । रज्जबअली खां की मृत्यु के पश्चात इमदाद खां ने इन्दौर छोड़ दिया तथा वह बनारस चले गये जहां पर उन्होंने ठुमरी अंग को सितार पर बजाने का प्रयास किया । उन्नीसवीं शताब्दी के अन्त में इमदाद खां के संगीत से प्रभावित होकर सर जितेन्द्र मोहन टैगोर इन्हें कलकत्ता ले आए, जहां सज्जाद मोहम्मद के संगीत से इन्हें काफी प्रेरणा मिली । इन्होंने सज्जाद मोहम्मद खां से सुरबहार पर ध्रुपद आलाप की शिक्षा ली ।[८१] तथा मीड़ की तकनीक को पूरी तरह से प्रयोग किया । उस समय यह कलकत्ता तथा भारत में काफी विख्यात हुए जिसका मुख्य कारण यह रहा कि इन्होंने ख्याल का अनुकरण करके सितार बजाया जो उस समय की जनसाधारण को बहुत अच्छा लगा तथा यह शीघ्र ग्राह्य भी था । इनकी प्रचलितता का दूसरा कारण यह था कि सेनिया घराने वालों ने अपने संगीत को ख्याल गायकी के संगीत के साथ मिलाना पसंद नहीं किया । इसके अलावा इमदाद खां के वादन में ख्याल अंग की तानें, कुछ विशेष प्रकार की फाले की क्रियाएं तथा मीड़ की तकनीकें भी सम्मिलित थीं । इनके रिकार्डों को सुनने से यह स्पष्ट हो जाता है कि इन्हें पूर्वी बाज एवं रजाखानी गतों से ही अधिक प्रेम रहा ।[८८] इमदाद खां की गतों में एक विशेष प्रकार के बोल बजाए जाते हैं जो निम्न हैं[८९] :--

0 3 2
दा दिर दा रा । - दा -रा दा । दा -दा रा । दा रा दा रा

इमदाद खाँ कुछ समय तक मिटियाबुर्ज में नवाब वाजिद अली शाह के पास भी रहे ।[60] तथा कलकत्ते के एक अन्य जमींदार ताराप्रसाद घोष के पास कुछ समय व्यतीत करने के बाद इन्होंने अपनी आयु का अंतिम भाग इन्दौर में व्यतीत किया । जहाँ वह महाराजा होल्कर के दरबार में रहे । सन् १६२० ई० में जब वह इन्दौर से इटावा लौट रहे थे तो बीच में रतलाम पर ही इनका स्वर्गवास हो गया ।[61] इमदाद खाँ के दो पुत्र थे । बड़े का नाम इनायत खाँ तथा छोटे का नाम वहीद खाँ था । इन्होंने अपने दोनों पुत्रों को नियमानुसार कंठ एवं यंत्र संगीत का शिक्षण दिया । दोनों पुत्रों ने अत्यधिक परिश्रम करके अपने वंश के सितार की वादन प्रणाली की विशेषता बनाए रखी । इनायत खाँ का जन्म सन् १८६४ ई० में ग्वालियर में हुआ था[61] । वह प्रारम्भ में अपने पिता के साथ इन्दौर राज्य में रहे, पिता की मृत्यु के पश्चात् यह पुन: कलकत्ते आ गये जहाँ इन्हें इमदाद खाँ के शिष्य श्री ब्रजेन्द्रकिशोर रायचौधरी का सम्पर्क मिला । यहीं इनको अमीर खाँ सरोदिये, श्री शीतलप्रसाद मुखर्जी इसराज वादक जैसे महान कलाकारों का सत्संग प्राप्त हुआ । तत्पश्चात् सन् १६२४ ई० में इनायत खाँ परिवार सहित गौरीपुर जिला मैमनसिंह में स्थाई रूप से निवास करने चले गये । इनायत खाँ ने ध्रुपद अंग के बीन-आलाप के स्थान पर ठुमरी अंग का प्रयोग करना प्रारम्भ किया जिससे इनके वादन में मिठास आ गयी । ध्रुपद अंग का आलाप न होने से पुराने तंत्रकारों ने इन्हें नहीं माना । परन्तु जनसाधारण में इसी वजह से यह बहुत प्रसिद्ध हो गये । इन्होंने सितार तथा सुरबहार को कलकत्ते का जनप्रिय वाद्य बना दिया । इनके गत, तोड़े एवं झाले का काम अद्वितीय था । द्रुत लय का काम इनका बहुत ही चित्ताकर्षक रहता था । तिहाई में तो वे श्रोतागणों को अत्यन्त चकित कर देते थे । गतों को समाप्त करते समय वह प्राय: तोड़े के साथ क्रमबार सात घ बजाकर वादन समाप्त

करते थे । यह इनकी निजी रचना थी ।[९१,९२] यह ज्यादा दिनों तक जीवित न रह सके तथा इनकी मृत्यु सन् १९३८ ई० में हो गयी ।

इनायत खां ने सितार व सुरबहार की लम्बाई एवं चौड़ाई को मापकीकृत करके एक निश्चित आधार दिया तथा सितार की जवारी पर भी विशेष ध्यान दिया जिससे सितार की आवाज और भी अच्छी हो गयी । एक मत के अनुसार इनायत खां ने सर्वप्रथम सितार पर तिहाइयां बजायीं ।[८९] परन्तु यह सत्य नहीं माना जा सकता क्योंकि इनसे पहले के इन्दौर घराने के रहमत खां के जोगिया, ललित रागों के रिकार्ड में तिहाइयों का प्रयोग मिलता है ।[९९] इनायत खां को सितार पर तीन परदे तथा दूसरा तूंबा लगाने का श्रेय भी दिया जाता है ।[८९] परन्तु सितार के क्रमिक विकास वाले अध्याय में देखा जा चुका है कि यह तीन परदे इनके समय से काफी पहले तथा दूसरा तूंबा भी सन् १८५० से पहले ही लग चुका था । इनायत खां ने सर्वप्रथम इकहरी तानों को, जो ख्याल अंग पर आधारित हैं, सबसे पहले रिकार्ड किया । यथा -- नि़ स रे ग म ग रे स । म प ध नी स नी ध प, नि़ स रे ग म ग रे स । नी धप म गरे सनि़[८९] । वी० के० रायचौधरी तथा डी० टी० जोशी इनके विशिष्ट शिष्यों में से हैं ।

इमदाद खां के दूसरे पुत्र वहीद खां भी सितार वादन में प्रवीण थे । इनके कई रागों के रिकार्ड भी उपलब्ध हैं जिनमें से एक तीन मिनट वाले रिकार्ड में पीलू तथा खमाज राग बजाया गया है । इसमें पीलू की द्रुत लय तीनताल में बजायी है जिसमें सीधे हाथ के बोल बहुत सुन्दर हैं । इनके वादन में सफाई है । खमाज राग में पहले तरब छेड़कर आलाप वादन, फिर तीनताल में विलम्बित गत, उसकी बढ़त तथा तानों का सुन्दर प्रयोग है जिसमें से कुछ तिये निम्न हैं --

१. गम ध नी सं- -३

२. गम धनी सं सं सं सं सं -३

इसी प्रकार एक गमक के तोड़े में गमक से ही तिहाई लाई है। सीधे हाथ का काम काफी जटिल एवं स्पष्ट है।[६३] यह यंत्र संगीत के पूर्ण साधक एवं एक ठोस व्यवसायी थे। यह अपने जीवन के पहले भाग में महाराजा पटियाला तथा अंतिम भाग में इन्दौर दरबार में सभावादक के रूप में रहे। इनके शिष्यों में पंजाब के रहीम खां सुरबहारिये का नाम ही अधिक उल्लेखनीय है।[६०] रहीम खां सुबहार पर पूरे एक सप्तक की मीड़ का काम करते थे। वह महाराजा पुंछ (कश्मीर) के दरबारी गुणी थे।

इटावा घराने के आधुनिक श्रेष्ठ सितार वादकों में विलायत खां का नाम सर्वश्रेष्ठ है। इनका जन्म सन् १९२६ ई० में गौरीपुर में हुआ। इनका बचपन कलकत्ते में व्यतीत हुआ प्रारम्भिक सितार की शिक्षा इन्होंने अपने पिता इनायत खां से ही ली। जब यह १२ वर्ष के थे तभी इनके पिता का देहान्त हो गया। इनकी १२ वर्ष की तालीम का अंदाज इनके उस समय के रिकार्ड को सुनने से मिलता है। इसमें इन्होंने राग तोड़ी बजाया है। इनके साथ इनायत खां ने डग्गे पर ताल दी है। इसे बजाते समय इन्होंने पहले थोड़ा सा आलाप किया है फिर तीनताल में द्रुत गत बजाई है तथा झाला बजाकर वादन समाप्त किया है। इनके वादन में सफाई है तथा झाला बहुत सुन्दर है परन्तु इनका वादन अभी प्रारम्भिक वादक जैसा ही लग रहा है।[६४] तेरह वर्ष की आयु में अपनी माताजी के साथ दिल्ली चले गये। यहां आकर इन्होंने अपने नाना बन्दे हसन खां से गायकी तथा सुरबहार की शिक्षा ग्रहण की,[६५] परन्तु दिग्गज गायक उस्ताद अमीर खां कहते थे कि आज उस्ताद विलायत खां का वादन और मेरा गायन सुनकर समझा जा सकता है कि यह क्या है। एक अन्य मत के अनुसार इस बात को प्रमाणित करने वाले संगीतज्ञ आज भी मौजूद हैं कि विलायत खां ने ध्रुवतारा जोशी, मोहम्मद खां (रहीस खां के पिता) और गायक अमीर खां से शिक्षा ग्रहण की।[६४] सत्य

कुछ भी हो यह तो कहा ही जा सकता है कि इनकी वादन शैली में ख्याल गायकी को ही बजाया जाता है, जैसाकि प्राचीन काल में वीणा पर ध्रुपद गायकी का अनुकरण किया जाता था। यह ख्याल अंग की सभी तानों को बजाने में कुशल हैं। इनकी तानें फिरत पर आधारित होती हैं। इनमें जोड़ालाप में लयकारी को विशेष ध्यान दिया जाता है। इनकी सप्त तानें एवं छपतानें तथा गतकारी से पूर्व जोड़ आलाप का काम भी आकर्षक है। विलम्बित लय में तानों के विभिन्न प्रकार श्रवणीय होते हैं तथा द्रुत गत में लाग, डाट, कृंतन, मीड़, कण एवं जमजमे का काम प्रमुख होता है।

विलायत खां के रिकार्डों को क्रमिक रूप से सुनने पर ज्ञात होता है कि इनका प्रारम्भिक रिकार्ड जो १२ वर्ष की उम्र में बना, उसमें सादा-सादा वादन है, परन्तु सफाई है, फिर करीब सन् १९४७-४८ ई० में २० वर्ष के करीब का रिकार्ड सुनें तो पता चलता है कि इसमें इनके बजाए राग देस में पूर्णतः ख्याल को ही उतार कर रख दिया है। यह ख्याल एवं ठुमरी के अंग पर आधारित है। इसमें इन्होंने तीनताल में द्रुत गत का ही वादन किया है। वादन में बोलों का प्राधान्य है। इसी प्रकार राग भैरवी को सुनने से भी ज्ञात होता है जो कि कहरवा ताल में बजायी गयी है। यहां भी ख्याल का ही प्रतिरूप वादित किया है।[९४,९६] इससे ऐसा प्रतीत होता है कि इन्होंने पहले अपने पिता इनायत खां साहब से सीखा तथा उनकी मृत्यु के बाद किसी गायक से शिक्षा ली जिसका कि इनके वादन पर स्पष्ट प्रभाव है। इस प्रकार इनका वादन आज पूर्णतः ख्याल पर आधारित है। जो वादन में एक दूसरा मोड़ है जबकि ख्याल का वादन पहले भी होता था परन्तु उन सितार वादकों ने सितार की स्वतंत्र वादन शैली के महत्व को जानते हुए ख्याल को सहायक रूप में रखा तथा इसका एक अलग ही बाज बनाया। ख्याल का ही पूर्ण अनुकरण नहीं किया। जिस प्रकार ख्याल के

प्रचार से पूर्व के सितार वादकों ने पूर्णत: ध्रुपद को ही सितार पर नहीं उतारा, बल्कि एक अलग मसीतखानी बाज को ही बजाया ।

विलायत खां के छोटे भाई इमरत खां ने सितार एवं सुरबहार दोनों को ही अच्छे ढंग से बजाया है । इनके वादन में इनके घराने की सभी विशेषताएं निहित हैं । विलायत खां एवं इमरत खां के बच्चों ने भी सितार वाद्य को बजाया है पुरन्तु वर्तमान समय तक कोई विशेष ख्याति अर्जित नहीं की है । विलायत खां के शिष्यों में से अरविन्द परिख ने मेहनत करके सितार वादन में कुशलता प्राप्त की है । इटावा घराने का संक्षिप्त चित्र चार्ट ५ में दिया गया है ।

लखनऊ घराना

गुलाम मोहम्मद तथा सज्जाद मोहम्मद ने अपने पूरब बाज में ध्रुपद बीन एवं रबाब अंग सम्मिलित किए । इस प्रकार इन्होंने गुलाम रजा के बाज को न सिर्फ एक सम्माननीय बाज बजाने का प्रयास किया, बल्कि सितार पर ध्रुपद शैली का भी भरपूर्ण वादन किया । गुलाम मोहम्मद के साथ ही वाजिद अली शाह के वजीर नवाब अली नकी खां जो हैदर खां के शिष्य थे, वह रजाखानी बाज का अनुकरण करते थे तथा होरी भी गाते थे ।[८४] इसी प्रकार वसीट खां भी हैदर खां के शिष्यों में से थे जो रजाखानी बाज बजाते थे । कुतुबुद्दौला बरेली निवासी भी रजाखानी बाज का अनुकरण करते थे तथा उन्होंने सर्वप्रथम मंमदार गतों का प्रयोग किया ।[८४,९८]

जहां गुलाम मोहम्मद एवं सज्जाद मोहम्मद ने पूर्वी बाज में सुरबहार के द्वारा ध्रुपद आलाप एवं अन्य बीन के अंग सितार में प्रयोग किये, उसी प्रकार लखनऊ में भी एक घराना ध्रुपद परम्परा के आधार पर पनपा । कालपी के प्रसिद्ध बीनकार साहब खां के शिष्यों में उनके भ्रात्र पुत्र अदिम खां का नाम इस घराने में उल्लेखनीय है ।

चार्ट-5

इटावा घराना

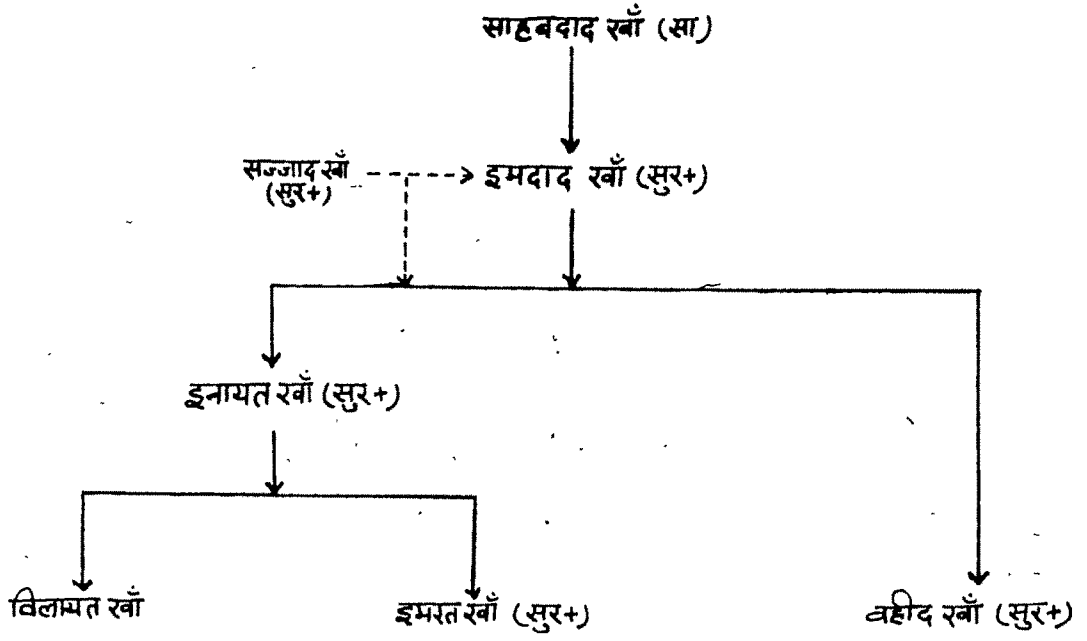

1.	खून का रिश्ता	↓
2.	सितार भी	+
3.	सारंगी	सा
4.	सुरबहार	सुर

आदिम खां कालपी के प्रसिद्ध घराने के उस्ताद थे । इनके पिता उस्ताद हुसैन खां जहानाबाद में रहते थे । इनके अन्य दो भाइयों का नाम `मदेखां` और `हुमान खां` था । ध्रुपद एवं वीणा वादन इनके परिवार का व्यवसाय था । आदिम खां के पिता उस्ताद हुसैन खां बीन बजाते थे, परन्तु अपने पुत्र को इन्होंने सितार सिखाया । आदिम खां एक अच्छे सितारिए होने के साथ-साथ कुशाग्र ध्रुपदिए भी थे । अत: आदिम खां अपने सितार पर ध्रुपद एवं बीन शैली का ही बाज बजाते थे । स्थाई अन्तरा, संचारी एवं आभोग बजाने के साथ वह ध्रुपद के अवचार के समान ही अपने वादन की बढ़त करते थे और तंत्र के रूप में उसके जोड़, फाला, लड़ गुथाव एवं ठोंक पर समाप्त करते थे ।[६८] आदिम खां साहब के पुत्रों के नाम अब्दुल गनी खां एवं मुरब्बत खां था । अब्दुल गनी खां राणा साहब खजूर गांव के पास तथा उनके छोटे भाई मुरब्बत खां राजा कन्दापुर के पास रियासतों में नियुक्त थे जो उत्तरप्रदेश की छोटी-छोटी रियासतें थीं । अब्दुल गनी खां का जन्म सन् १८५७ ई० के करीब हुआ । अब्दुल गनी खां मसीतखानी वादन में सिद्धहस्त थे तथा अपने पिता आदिम खां का ही बाज बजाते थे । इनका आलाप वादन शुद्ध ध्रुपद शैली के आधार पर ही होता था ।[६६]

अब्दुल गनी खां के प्रमुख शिष्यों में से लखनऊ के डा० यूसुफ अली खां का नाम उल्लेखनीय हैं । वह अपनी प्रतिपाद्य सामग्री को बड़े ही कलात्मक तथा सुव्यवस्थित ढंग से रखते थे । इनका ताल ज्ञान आश्चर्यजनक था । उनकी शैली में परम्परागत तंत्र वाद्य का प्रावान्य था । ~~वे ध्रुपद के समान ही राग का शुद्ध आलाप करते थे~~ । वास्तविक रूप में यूसुफ अली खां ठुमरी अंग के आलाप एवं फाला (ठोंक प्रकार भी) बजाने के उपरान्त रजाखानी गतें व तोड़े बजाया करते थे । इनका जन्म सन् १८८७ ई० के आस-पास हुआ ।

आजकल सितार वादन में गले की तानों (यथा ग ग रे स नी नी ध प ग ग रे स आदि) के विभिन्न प्रयोग बहुत किए जाते हैं। इससे भिन्न उस्ताद यूसुफ खां के वादन में तन्त्रकारी के अंग दिर दिर का प्रयोग बहुत होता था। इन्होंने सन् १९२४, २५ और २६ ई० में अखिल भारतीय संगीत के अधिवेशन में भी बजाया है।[९९]

यूसुफ अली खां के पुत्र स्माइल खां अपने पिता की शैली का यथावत अनुकरण करते हुए सितार बजाते हैं। स्माइल खां के पिता की लाटूश रोड, लखनऊ पर सितार बनाने की दुकान थी। यह पुरानी गतें याद करने एवं बजाने में माहिर थे। शायद अब इस दुकान को स्माइल खां ही देखते होंगे।[८२,९९]

लखनऊ के सितार वादकों में इलियास खां का नाम भी महत्वपूर्ण है। इलियास खां के पिता सखावत हुसैन खां कुशल सरोद वादक थे। जो कि करामतुल्ला खां के वंश में से थे। इनका वंश रबाबियों के नाम से विख्यात है। इस घराने के कलाकारों में सेनिया कलाकारों की वादन शैली की झलक मिलती है। इलियास खां ने सितार की शिक्षा प्रारम्भ में अपने पिता से, फिर खजूरी गांव के कालपी घराने के ध्रुपदीय एवं सुप्रसिद्ध सितार वादक अब्दुल गनी खां से ली। इन्होंने अपने नाना करामतुल्ला खां सरोदिए से भी शिक्षा प्राप्त की। अन्त में यह लखनऊ के उस्ताद यूसुफ अली खां के शिष्य हो गए। २५ वर्ष की अवस्था में इन्होंने अपने निरन्तर अभ्यास एवं सुन्दर सितार वादन से बहुत ख्याति प्राप्त कर ली। यह मसीतखानी एवं रजाखानी दोनों प्रकार की गतें बजाने में प्रवीण हैं। यह लड़गुथान, ठोक, झाला तथा विभिन्न प्रकार के स्वर समुदायों का प्रदर्शन करते हैं। ये राग की शुद्धता को ध्यान में रखते हुए पुरानी तंत्रकारी के तरीके से बजाते हैं। इनके वादन में बीन के साथ ही रबाब की झलक भी मिलती है। इनाले एवं दिरदिर के काम में यह रबाब एवं सुरबहार का ही काम

दिखाते हैं। इलियास खां की गतें ३२ या ६४ मात्रा में बंधी होती हैं तथा तबले की गत दो या तीन आवृत्तियों में समाप्त होती है।

इस प्रकार लखनऊ घराने के वादकों ने भी समय की मांग के अनुसार अपने वादन में परिवर्तन करके केवल रजाखानी बाज की जगह दोनों बाजों को अपनाया तथा उन्हें एक ठोस आधार दिया एवं उसके स्वरूप में और अधिक फैलाव उत्पन्न कर दिया। लखनऊ घराने का संक्षिप्त चित्र चार्ट ६ पर दिया गया है।

अब कुछ ऐसे सितार वादकों का वर्णन किया जा रहा है जो किसी घराने विशेष से सम्बन्धित न होते हुए भी प्रख्यात सितार वादक रहे हैं तथा सितार के क्षेत्र में महत्वपूर्ण योगदान रहा, वह निम्न हैं।

उ० नसीर अली खां ने अठारहवीं शताब्दी के प्रथम भाग में तदानीन्तन काशी नरेश को संगीत की शिक्षा दी। काशी में उनके दो प्रमुख शिष्य जिन्हें उन्होंने सितार एवं सुरश्रृंगार का पूर्ण ज्ञान दिया, उनके नाम थे अर्जुनदास खन्ना तथा पन्नालाल बाजपेयी। नसीर अली खां ने होनहार शिष्यों को शिक्षा दी परन्तु अब उनके शिष्य नहीं मिलते। उत्तरप्रदेश में जो सितार के वादन का प्रचार हुआ, उसका श्रेय इन्हीं को जाता है। इनके शिष्यों में ही जीवनलाल महाराजा का नाम और उनके शिष्य वल्लभदास दामूलजी, बम्बई का नाम उल्लेखनीय था। इन्हीं से स्वर्गीय पं० विष्णुनारायण भातखण्डे ने सितार सीखा। पन्नालाल बाजपेयी रामनगर के महाराजा ईश्वरीनारायण सिंह के दरबार में रहे। यह एक सप्ताह तक केवल स्थाई आलाप ही बजाते थे एवं दो मिज़राबों से वादन करते थे।[१००]

पूरब में दरभंगा, गया, बनारस आदि शहरों में भी कई घराने हुए। दरभंगा के रामेश्वर पाठक एक मशहूर सितारिए हुए हैं। इनका जन्म सन् १९१७ के आसपास

चार्ट 6

लखनऊ घराना

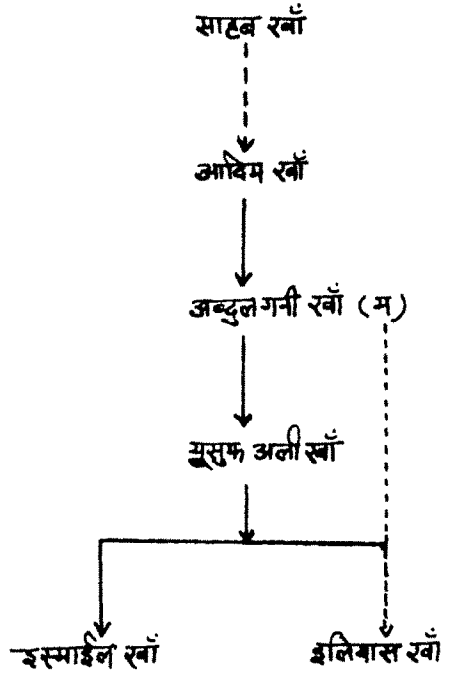

1.	खून का रिश्ता	↓ (solid arrow)
2.	शिष्य का रिश्ता	↓ (dashed arrow)
3.	केवल मसीत खानी	म

मुंगेर जिले के नारायणपुर गांव में हुआ । इनके पिता का नाम अपूक्ष पाठक था । वह सितार वादन के साथ ध्रुपद का गायन भी करते थे । इन्होंने अपने पिता से सितार वादन सीखा । यह उन्नाव के महाराज राय बहादुर राम सुखरणप्रसाद अग्रवाल के यहां रहे तथा उसके पश्चात मिथिला नरेश श्री रामेश्वर सिंह के दरबार में आ गये । इनके भाई राम गोविन्द पाठक के पुत्र बलराम पाठक ने आज सितार वादन के क्षेत्र काफी ख्याति अर्जित की है । यह पटना में रहते हैं ।[१०१,१०२]

पटियाला में महबूब अली नाम के एक बहुत बड़े सितारिए एवं सुरबहारिए हुए हैं । कहा जाता है कि इनका सुरबहार इमदाद खां से भी बड़ा था । इतना भारी एवं बड़ा सुरबहार किसी ने नहीं बजाया । प्राय: एक फुट चौड़ी डांड थी । इसे बजाने के लिए काफी शक्ति की आवश्यकता होती थी । इसी प्रकार रीवा दरबार में भी नन्दनलाल नामक एक सितारिए रहते थे तथा रामनगर में बन्दन पाठक नामक एक सितार वादक का उल्लेख भी मिलता है ।[१०३]

आबिद हुसैन खां जयपुर के प्रख्यात बीनकार रजब अली खां के प्रपौत्र थे । रजब अली खां ने बन्दे अली खां से बीन सीखी । इन्हें नाम-साम्य के कारण रजब अली खां गायक से नहीं मिलाना चाहिये । इसी प्रकार इन्हीं के शिष्य तथा दिल्ली के असद अली खां के बाबा मुशर्रफ खां जिन्होंने बाईस वर्ष तक कठिन अभ्यास करके बीन वादन पर कुशलता प्राप्त की ।[१०४] इन्हें मुराद खां के शिष्य मुशर्रफ खां से नहीं मिलाना चाहिये । आबिद हुसैन खां के पिता उस्ताद जमालुद्दीन खां बड़ौदा के प्रवीण बीनकारों में से थे । आबिद हुसैन खाँ का जन्म सन् १९०७ ई० में हुआ । इनकी प्रारम्भिक शिक्षा पिता के द्वारा ही दी गयी । इन्होंने कई विख्यात कलाकारों से ध्रुपद, ख्याल, सितार, पखावज तथा तबला वादन सीखा । यह दस वर्ष तक बड़ौदा में तथा बाद में जंजीरा में कलाकार

के रूप में रहे । मुख्यत: यह विलम्बित अंग का कार्य ही किया करते थे तथा प्राचीन परम्परा का ही पूर्णत: वादन किया करते थे ।[१०५]

इसी प्रकार जयपुर में मोहम्मद बख्श देसाई वाला के नाम से एक प्रमुख सितार वादक भी रहे हैं ।[१०६] उनका वादन बहुत मधुर एवं स्पष्ट था जैसाकि इनके बजाए तोड़ी मियां की तेताल तथा आसा की गत सुनने से ज्ञात होता है ।[१०६]

प्यार खां सितारियों के शिष्यों में संवलिया खां भी थे । इनके छोटे भाई का नाम पीर खां था, वह भी एक अच्छे कलाकार थे । इनके पुत्र का नाम इज्जत खां था । इज्जत खां के दो पुत्र हुए, तुरान खां एवं तुल्लन खां । तुल्लन खां के पुत्र का नाम हामिद हुसैन था जो अपने समय के श्रेष्ठ सितारिए थे । यह दि आल इंडिया मैरीस कालेज आफ हिन्दुस्तानी म्यूज़िक, लखनऊ में शिक्षक के रूप में रहे । इन्होंने शास्त्रीय सितार वादन में काफी सफलता प्राप्त की जो उनके समय के किसी सितार वादक ने नहीं प्राप्त की । यह मुख्यत: आलाप, जोड़, झाला और मसीतखानी गत एवं तोड़े ही बजाते थे । विलम्बित गत वादन क्रिया में यह अप्रतिद्वन्द्वी थे तथा घण्टों राग विस्तार करते थे । इनका निवास स्थान इटावा था । इनकी मृत्यु सन् १९५६ के आसपास हो गयी ।[१०७]

देहली के प्राचीन सितार वादकों में गोस्वामी पन्नालाल का नाम महत्वपूर्ण है । इनकी जन्मभूमि मुल्तान शहर का उंच गांव था । शाही दरबार से आपके परिवार को पर्याप्त धन एवं रहने के मकान एवं मासिक वृत्ति भी नियत कर दी गयी थी । इनके परिवार में कंठ एवं यंत्र संगीत का प्रचार विशेष था । रामलाल के चार पुत्र थे जिनके नाम रतनलाल, हीरालाल, कृष्णलाल और पन्नालाल थे । पन्नालाल को बाल्यावस्था में अपने पिता तथा बड़े भाई रतनलाल जी से संगीत का उचित शिक्षण मिला । सितार

से अधिक रुचि होने के कारण ये आजीवन इसी के अभ्यास में रत रहे। ये संगीतप्रेमियों को शिक्षा भी दिया करते थे। इनका सितार वादन बहुत ही मधुर एवं आकर्षक था। यह ही अपने वंश के अंतिम प्रतिनिधि रहे। सभी राज्य एवं घरानों से इनका घनिष्ठ सम्बन्ध रहा। यह अधिकतर मसीतखानी गतें ही बजाते थे। गतों के साथ तोड़ों का अल्प प्रयोग था। गतों के बोलों को ही उलट-फेरकर बांट किया करते थे। गतें अधिकतर विलम्बित लय पर बजायी जाती थीं।

श्री पशुपतिसेवक मिश्र का जन्म सन् १८८७ के लगभग काशी में हुआ था। यह बनारस के प्रख्यात प्रसदु मिश्रा के घराने के थे। इन्हें बचपन से ही अपने पिता से कण्ठ संगीत, मुख्यत: ध्रुपद, होली और ख्याल गायन की शिक्षा मिली, इसके पश्चात् इन्होंने सितार और सुरबहार भी सीखा, तथा बांसे बरेली के प्रख्यात वीणा वादक मोहम्मद हुसैन खां से ही यंत्र संगीत के भिन्न-भिन्न बाजों का पर्याप्त ज्ञान प्राप्त किया। यह गत तोड़ों के अतिरिक्त लड़ीगुथाव और लड़गुथाव आदि का बड़ी निपुणता से वादन किया करते थे। तोड़ों के प्रयोग में विशेष निपुण थे। इनका लयकारी का काम बड़ा ही चित्ताकर्षक था।[१०८]

श्री अभयाचरण चक्रवर्ती मुख्यत: यंत्र संगीत के अन्तर्गत मुरली एवं सितारवादन में प्रवीण थे। संगीत ही इनके जीवन का मुख्य लक्ष्य एवं अवलम्ब रहा। इन्होंने मुर्शिदाबाद के प्रख्यात सितार वादक फाशिम अली खां और बरकत उल्ला खां से शिक्षण प्राप्त किया था। यह गतों के साथ तोड़ों का प्रयोग नहीं करते थे, किन्तु गतों के बोलों को ही भिन्न-भिन्न प्रकार से बजाया करते थे। द्रुत लय की गतों के साथ दिर दिर दिर दाड र दाड र दाड आदि बोल बजाया करते थे। लगभग ७० वर्ष की अवस्था में वाराणसी नगरी में इनका देहान्त हो गया। श्रीपद बन्दोपाध्याय ने इन्हीं से सितार की प्रारम्भिक शिक्षा प्राप्त की।[१०९]

भगवान दास का जन्म १८५२ ई० में हुआ था। दुर्भाग्यवश जब वे प्रवेशिका परीक्षा की तैयारी कर रहे थे, उसी समय उनके पिता का स्वर्गवास हो गया। उन्होंने अपने पिता के प्रमुख शिष्य बाबू रूपलाल राय से संगीत की प्रारंभिक शिक्षा प्राप्त कर सुल्तानबख्श से मसीतखानी गतें सीखीं, उसके बाद उन्होंने कलकत्ते के नवीनचन्द्र गोस्वामी से रजाखानी गतें सीखीं। उन्हें उस्ताद कासिम अली खां रबाबिया, इनायत हुसैन खां सरोदिया, मुसींद अली खां बीनकार और अली रजा खां सुरबहार वादक जैसी विभूतियों से सीखने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था। ढाका के नवाब बहादुर अब्दुल गनी खां साहेब उनको सदैव आर्थिक सहायता दिया करते थे। वे वृन्दावन के प्रसिद्ध सेठ लक्ष्मणदास के पास बहुत काल तक रहे और इसी समय में कंठ संगीत की कठिन तपस्या भी की, जिसके फल-स्वरूप गुणी समाज में उन्हें योग्य माना गया। जबवह कलकत्ता लौटे तो उन्होंने भारतीय संगीत समाज जो कि महाराजा यतीन्द्र मोहन ठाकुर तथा सुरेन्द्र मोहन ठाकुर की संरक्षता में खोला गया था, उसी स्कूल में अध्यापक के रूप में कई वर्ष तक सितार का अध्ययन किया।[११०] यह विलम्बित अंग का काम बहुत ही योग्यता के साथ किया करते थे एवं प्रचलित पांच मुख्य अंगों के काम पर अपना पूर्ण कौशल दिखाते थे।

ज्ञितेन्द्रनाथ भट्टाचार्य का जन्म सन् १८७७ में राणाघाट जिला नदिया (बंगाल) में हुआ था। इनके पिता श्री वामचरण शिरोमणि जी को व्याकरण एवं वेददास का पर्याप्त ज्ञान था। अत: आपने अपने पिता से ही पूर्ण शिक्षा प्राप्त की। उसी समय के अनन्तर प्रख्यात सितार वादक मोहम्मद खां (बीनकार), वासत खां और कासिम अली खां (रबाबिया) एवं सज्जाद मोहम्मद खां (सुरबहार वादक) आदि से आपको सितार सीखने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। यह सितार में प्राय: सब अंगों का काम जानते थे। परन्तु मुख्यत: विलम्बित काम ही सितार पर अधिक प्रदर्शित किया करते थे। यह आलाप एवं जोड़ अंग के कामों में अधिक कुशल थे। तथा मसीतखानी गतों

का भी बहुत कुशलता से वादन करते थे ।[११०] करामतुला खां सिरोदिया के शिष्यों में से ननी गोपाल मोतीलाल सितार वादन में ख्याति प्राप्त थे । इनका जन्म १८८६ में कृष्णनगर, बंगाल में हुआ था । इन्होंने सर्वप्रथम श्री सत्येन्द्रनाथ चट्टोपाध्याय से सितार शिक्षण प्रारम्भ किया । कुछ वर्षों उनसे सीखने के पश्चात् इन्होंने पुन: रजनीकान्त राय से शिक्षा प्राप्त की । फिर यह कुकुब खां से बहुत काल तक शिक्षा प्राप्त करते रहे एवं उनकी मृत्यु के उपरांत उ० करामतुला खां से सितार एवं सरोद का चिरकाल तक ज्ञान प्राप्त किया ।[९९] विजयकुमार मोतीलाल इनके एकमात्र पुत्र थे, जिन्हें इन्हीं से सरोद बजाने का शिक्षण प्राप्त हुआ ।[९९]

१८१८ ईसवी में खाण्डेराम भाऊ साहेब अष्टीवाले भोपाल राज्य के कर्मचारी रहे । उनके बड़े पुत्र का नाम आवा साहेब तथा छोटे पुत्र का नाम दादा साहेब व रघुनाथ खाण्डेराव था । यह ही सर्वप्रथम उज्जैन में आकर बसे । इन्हें यंत्र संगीत मुख्यत: सितार से प्रेम था । रघुनाथ खाण्डेराव के एकमात्र पुत्र का नाम नानासाहब था । इन्हीं से उज्जैन के अष्टीवाले वंश का इतिहास आरम्भ होता है । नाना साहब को सर्वप्रथम बाल्यावस्था में उस्ताद मुंगलू खां सितारिये से जो कि जावरा - निवासी थे, सितार की शिक्षा प्राप्त हुई । इनसे गत, तोड़े आदि की शिक्षा प्राप्त करने के उपरान्त प्रख्यात बीनकार उ० बन्देअली खां से शिक्षा ग्रहण की । उ० बन्देअली खां के शिष्यों में मुरादखां (यह मुगलू खां साहब के छोटे लड़के थे। इनके बड़े लड़के का नाम इमदाद खां था जो गान विद्या में प्रवीण थे) का नाम वीणा वादन में तथा सितार वादन में नाना साहब का नाम उल्लेखनीय है । सितार पर यह विलम्बित काम अच्छा करते थे, बड़े पुत्र का नाम ढूंढीराजकृष्ण अष्टीवाला था । इन्हें अपने पिता से ही संगीत शिक्षण प्राप्त हुआ । यह उस्ताद बन्दे अली खां साहब के प्रतिनिधियों में से एक हैं । यह

विलम्बित में मुख्यत: जोड़ का काम अच्छा करते थे ।[८६]

उस्ताद हैदर हुसैन चुगताई का जन्म सन् १८९९ ई० में हुआ । इन्होंने प्रारम्भ में अपने पिता से यंत्र एवं कंठ संगीत की शिक्षा प्राप्त करने के बाद दिल्ली आकर गायन एवं वादन कला का व्यवसाय आरम्भ किया । मुख्यत: यह सितार वादन में ही व्यस्त रहे । यह मसीतखानी गतें कम बजाया करते थे । यह सदैव गत के साथ तोड़े एवं झाला दुगुन लय के साथ बजाते थे और यही प्रतिक्रिया आरम्भ से अन्त तक चलती थी । यह तर्जनी और मध्यमा में मिज़राब पहन कर सितार बजाते थे । इनकी द्रुतलय का वादन बहुत अच्छा था । दिल्ली के महमूद मिर्जा इनके रिश्तेदार हैं । हैदर हुसैन का देहान्त सन् १९५० ई० में हुआ ।[१०९]

कुछ अन्य प्रख्यात सितार वादकों का परिचय निम्न प्रकार से है ।

१. बली अल्ला खां

इनके विषय में विस्तृत जानकारी नहीं मिली है । परन्तु इनका सितार पर बजाया हुआ ३ मिनट का रिकार्ड उपलब्ध है । इस रिकार्ड में इन्होंने एक तरफ मिश्र पीलू तथा इसकी दूसरी तरफ राग माझ खमाज का वादन किया है । इनके वादन में मीड़, कृन्तन, कण का अच्छा प्रयोग है । द्रुत गतों का ही इन्होंने मुख्यत: वादन किया । झाले में बहुत सुन्दर बोलों का प्रयोग है । तबले के बोल भी सितार पर बजाए हैं ।[१११]

२. एस०जी० मोहिउद्दीन

एक ढाका के सितार वादक हैं । इनका राग बेहारी तथा देस का तीन मिनट का बजाया हुआ रिकार्ड उपलब्ध है । इन्होंने तरब छेड़कर वादन प्रारम्भ किया

है । इनका वादन ख्याल गायकी अंग का है इसमें द्रुत गतों का ही वादन किया गया है । इनके वादन में सफाई मिलती है ।[११२]

३. एक सितार वादक एम० शफी का तीन मिनट का रिकार्ड भी मिला है । इसमें सितार पर फिल्म रत्न के बजाए गाने हैं ।

४. एक अन्य रिकार्ड भी प्राप्त हुआ है, इस पर मुहम्मद शरीफ लिखा है । इसके एक तरफ शुद्ध सारंग बजाया हुआ है । इसमें दोनों मध्यम का प्रयोग सुन्दर है । दूसरी तरफ राग पूरिया धनासरी लिखा है, मध्य तीनताल की गत बजाई है । इनके वादन में मिज़राब के बोलों का प्रयोग सुन्दर है तथा छोटी-छोटी तिहाइयां भी बजायी हैं ।[११३]

५. गुलाम हुसैन खां दिल्ली के निवासी थे तथा सितार की मसीतखानी गतों के वादन में प्रवीण थे ।[६७]

६. बाबू ईश्वरीप्रसाद उत्तरप्रदेश के निवासी थे । इनके पिता का नाम बाबू रामसहाय था । यह भी सितार वादन में प्रवीण थे ।[६७]

७. गुलामबख्श ने गुलाम मोहम्मद से सितार वादन की शिक्षा ग्रहण की । यह भी सितार वादन में सिद्धहस्त थे ।

८. मीर मसूम अली भी सितार वादन में प्रवीण थे तथा यह मुरादाबाद के निवासी थे ।[६७]

९. मीर अहमद हुसैन उत्तरप्रदेश के निवासी थे तथा सितार वादन में कुशल थे ।[६७]

१०. मियां उजागर मल भी उत्तरप्रदेश के निवासी तथा श्रेष्ठ सितार वादक रहे हैं ।[६७]

चार्ट ७ में सितार वादकों का तथा उनकी वादन शैली का विकास दिखाया गया है। मसीतखानी बाज के नीचे लिखे गए सभी कलाकारों ने मुख्य रूप से इसी बाज को बजाया। इसी प्रकार रजाखानी बाज के नीचे लिखे वादकों ने मुख्यत: रजाखानी बाज ही अपनाया। यह स्पष्टत: कहा जा सकता है कि सितार वादक एवं उसकी वादन शैली दोनों ही क्रमश: बीन वादकों एवं बीन की वादन प्रणाली से ही उद्भूत हुई है। इसी कारण विद्वान संगीतशास्त्री सितार की उत्पत्ति वीणा से एवं भारत में हुई मानते हैं। अगर सितार वादकों के पूर्वज गुरुओं पर दृष्टिपात किया जाय तो वह भी वीणा वादक ही मिलते हैं।

इस प्रकार बीन अंग पर तंत्रकारों ने शनै: शनै: आलाप, जोड़ आलाप एवं झाले का विस्तार किया जो क्रम कंठ संगीत में नहीं मिलता। कंठ संगीत में केवल सुविस्तृत आलाप ही किया जाता है। जोड़ आलाप एवं झाला बीन का मौलिक रूप और सौन्दर्य है। इस बाज से ही मुख्यत: सितार वादन आरम्भ होता है। उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध एवं बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में एक अलग अंग जिसे रबाबी अंग कहा जाता है, सितार पर अपनाया गया। इसका उदाहरण अल्लाउद्दीन खां, निखिल बैनर्जी आदि हैं जिन्होंने मुख्य रूप से रबाब अंग से लड़ी, गुथाव, लड़ गुथाव, लड़ लपेट और कचर ली। यह सभी बाज क्योंकि केवल सारिका रहित वाद्यों पर सुशोभित होते हैं, सितार पर अच्छे नहीं लगते। परन्तु इन कुशल कलाकारों ने उक्त सभी अंगों को बड़ी योग्यता से सितार वादन में प्रयोग किया, अत: रबाबी अंग को भी सितार वादन का एक अंग बना लिया गया।

गतकारी ही सितार की विशेषता एवं मुख्य अंग रही जिसका प्रचलन सर्वप्रथम फिरोज खां से हुआ। इसी से मसीतखानी और फिर रजाखानी गतों के वादन की

चार्ट- 7

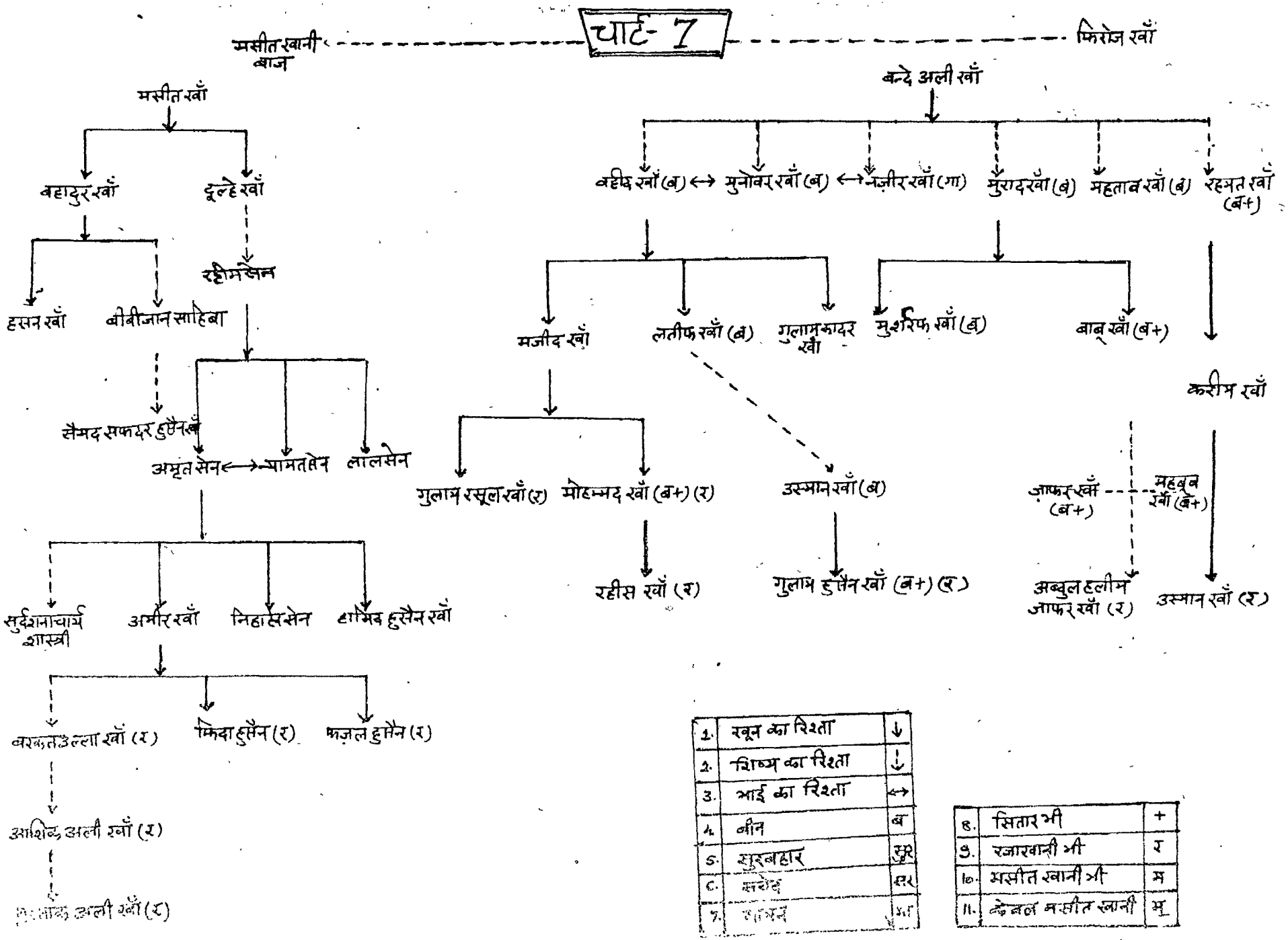

1.	खून का रिश्ता	↓
2.	शिष्य का रिश्ता	⇣
3.	भाई का रिश्ता	↔
4.	बीन	ब
5.	सुरबहार	सुर
6.	सरोद	सर
7.	गायन	गा

8.	सितार भी	+
9.	रजारवानी भी	र
10.	मसीत खानी भी	म
11.	केवल मसीत खानी	मू

(शेष आगे पृष्ठ पर)

(चार्ट पिछले पृष्ठ का शेष भाग)

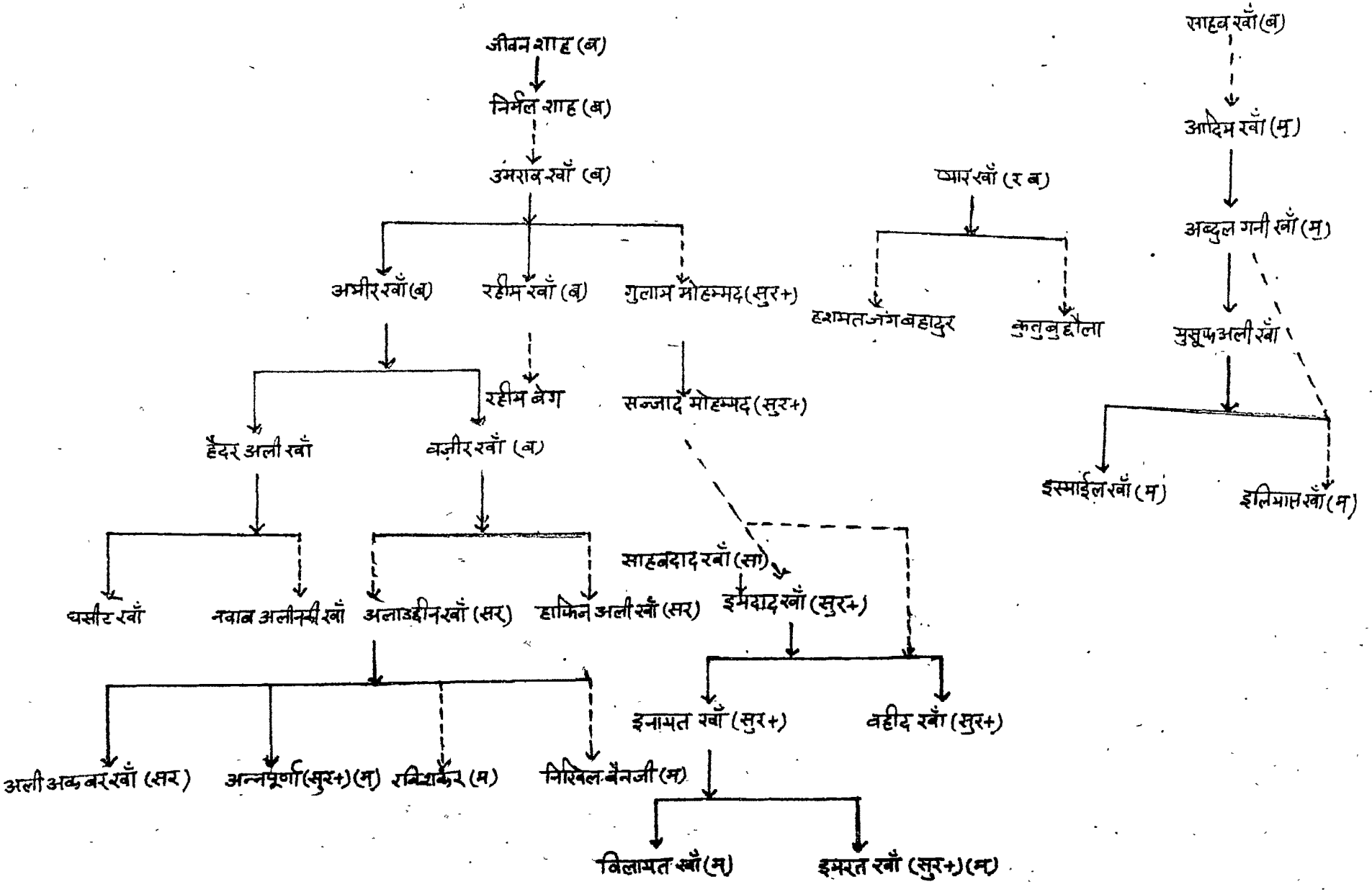

प्रथा का अभ्युदय हुआ। प्रारम्भिक मसीतखानी वादन में आलाप का कोई पृथक स्थान नहीं था। सेनी घराने वालों ने इसमें जोड़ अंग को भी शामिल कर लिया जिससे कि सितार को बीन के बराबर लाया जा सके। अमृत सेन तथा बाद के कलाकारों ने प्राचीन ध्रुपद शैली के साथ-साथ ख्याल शैली की विशेषताओं को भी मसीतखानी वादन में अपनाना प्रारम्भ किया। परन्तु पूर्ण अनुकरण नहीं किया। इमदाद खां एवं इनायत खां ने ख्याल व ठुमरियों को जनसाधारण की रुचि के अनुसार अपने वादन में अपनाया। बीसवीं शताब्दी में विलायत खां ने विभिन्न सितार की तकनीकों का प्रयोग करते हुए पूर्ण ख्याल अंग को ही सितार पर बजाया।

उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य तक जहां दिल्ली व उसके आसपास सितार पर जोड़, मसीतखानी गत व तोड़े बजाए जाने लगे, वहीं पूरब में ध्रुपद आलाप एवं मसीत-खानी गतों को ही अपनाया जाता था। इन वादकों में मुख्यत: आदिम खां, अब्दुल गनी इत्यादि का नाम अग्रगण्य है। गुलाम रजा ने लखनऊ के नवाबों की रुचि के अनुसार तराना व ठुमरी अंग पर आधारित द्रुत गति की वादन शैली का निर्माण किया जिसे रजाखानी नाम से पुकारा गया। प्रारम्भ में यह बाज लखनऊ व उसके आसपास के कलाकारों द्वारा अपनाया गया। इनमें कुतुबुद्दौला, नवाब अली नकी खां एवं हशमत जंग बहादुर प्रमुख हैं। प्रारम्भ में कलाकार इस बाज को नहीं अपनाते थे परन्तु उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में गुलाम मोहम्मद, सज्जाद मोहम्मद ने इस बाज पर कड़ी मेहनत करके इसे एक सम्मानित बाज बनाया। गुलाम मोहम्मद ने, जहां सितार पर रजाखानी बाज को प्रचलित करने में अपना सहयोग दिया, वहीं पूर्ण ध्रुपद शैली के आलाप को सुरबहार पर बजाने का प्रचार भी किया। इसका अनुकरण सज्जाद मोहम्मद, इमदाद खां, इनायत खां तथा कई बंगाल के सितार वादकों ने भी किया। बीसवीं शताब्दी के मध्य में अल्लाउदीन खां, निखिल बैनर्जी एवं रविशंकर के सितार

पर अति मंद्र सप्तक में आलाप करने से सितार का वादन क्षेत्र विकसित हो गया जिससे सुरबहार लुप्त हो गयी ।

इस अध्याय के अध्ययन से यह भी स्पष्ट हो जाता है कि किस तरह एक घराने का जन्म हुआ, विकास हुआ तथा कुछ घरानों का अंत भी होने लगा । उदाहरणत: सेनी घराना जो कि दिल्ली घराने से उत्पन्न हुआ । अमृत सेन एवं अमीर खां ने इसके वादन में बहुत महत्वपूर्ण योगदान दिया । परन्तु इनका अपनी कला को अपने तक ही सीमित रखने की प्रवृत्ति के कारण अमीर खां के बाद असली सेनी बाज धीरे-धीरे लुप्त होने लगा । इन वादकों की इस प्रकार की धारणा के कारण ही नये कलाकारों ने जिनमें बरकतउल्ला खां व उनके शिष्य हैं, रजाखानी बाज को निखारा । इस प्रकार आज सेनी बाज की असली शैली को कोई नहीं जानता जबकि स्वयं को सेनी घराने से संबंधित बताने वाले बहुत मिलेंगे ।

चार्ट ७ से यह भी स्पष्ट हो जाता है कि कई उन्नीसवीं शताब्दी के तथा बीसवीं शताब्दी के इन्दौर घराने के वादकों ने बीन को छोड़कर सितार ही अपनाया यथा मजीद खां, रहमत खां, गुलाम हुसैन खां आदि । इस प्रकार इन्दौर घराना, जो कि बीन वादकों का गढ़ था, उन्होंने भी मुख्यत: सितार को ही अपनाया ।

उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध तक मसीतखानी व रजाखानी बाज इतने अधिक सम्मानित हो गये थे कि जो कलाकार मसीतखानी बाज का वादन करते थे, वह मसीतखानी बाज का ही तथा जो वादक रजाखानी बाज का वादन करते थे वह रजाखानी का ही वादन किया करते थे, दूसरे बाज को नहीं अपनाते थे । चार्ट ७ पर बने वंश वृक्ष से यह भी स्पष्ट हो जाता है कि किस प्रकार बीसवीं शताब्दी के कलाकारों ने दोनों बाजों की महत्ता को स्वीकार करते हुए, इन्हें मिला कर दो

वादन शैलियों का सुन्दर समायोजन किया ।

आधुनिक काल में रेडियो, टेलीविजन तथा रिकार्डप्लेयर की प्रचलितता से किसी वादक के वादन में कोई विशिष्ट घराने वाली बात नहीं मिलती, वरन् सभी का वादन समान सा हो गया है केवल व्यक्ति विशेष पर ही उसके व्यक्तिगत वादन का प्रभाव दृष्टिगोचर होता है । इस प्रकार आज घराने का कोई अस्तित्व नहीं है । यह घराने की अवनति का काल अथवा समाप्ति का काल कहा जाय तो अत्युक्ति नहीं होगी ।

THE Smt. HANSA MEHTA ... 251

ग्रन्थ एवं ग्रन्थकारों की सूची

१. V.M.Deshpande, Indian Musical Traditions and aesthetical study of the Gharanas in Hindustani Music, 1973, Page ii.

२. वामन राव देशपाण्डे, संगीत कला विहार, मार्च १९६२ ।

३. J.T.Plattis, A dictionary of Urdu, Classical Hindi and English London Oxford, 1965, Page-932.

४. B. Joshi, Understanding Indian Music, 1963, Page 71-73.

५. श्री गणेशप्रसाद द्विवेदी, हिन्दुस्तानी कल्चर और संगीत, पत्रिका न्याहिन्द ।

६. W.Irvine, Later Mughals, Vol.I, 1922, Page 193.

७. डी०टी० जोशी, संगीत शास्त्रकार व कलावंत्यांचा इतिहास, १९३६, पूना, पृष्ठ १४१-१४३ ।

८. सुदर्शनाचार्य शास्त्री, संगीत सुदर्शन, १९१६, बनारस, पृष्ठ १८, १६, २५ ।

९. दरगाह कुली खाँ, मीराते देहली, १७३९, पृष्ठ ५६-५७, (पर्शियन भाषा में, स्वयं अनुवादित)

१०. आचार्य बृहस्पति, संगीत चिंतामणि, १९७६, पृष्ठ ३४५ ।

११. आर० अशर्, चन्द मशहूर मूसीकीकार, पृष्ठ २० ।

१२. आचार्य बृहस्पति, संगीत चिंतामणि, १९७६, पृष्ठ ३५६ ।

१३. वही, पृष्ठ ३३८ ।

१४. मोहम्मद करम इमाम खाँ, मादन-उल-मूसीकी, १९२५, पृष्ठ २३९-२४० ।

१५. इब्राहीम आदिल शाह द्वितीय, किताब-ए-नौरस, १९५६, परिचय (ii), पृ० ५३ ।

१६. फकीरुल्लाह, राग दर्पण, रामपुर प्रति, पृष्ठ ६३ ।

१७. दरगाह कुली खां, पुरानी देलही की हालत, १६४६, पृष्ठ ६८-६६ (ख्वाजा निज़मी का उर्दू अनुवाद)

१८. वी०के० रायचौधरी, भारतीय संगीत कोष, पृष्ठ १६८-१६६ ।

१६. डी०टी० जोशी, संगीत शास्त्र व कलावंत्यांचा इतिहास, १६३६, पूना, पृ० २५० ।

२०. सुदर्शनाचार्य शास्त्री, संगीत सुदर्शन, १६१६, पृष्ठ २६ ।

२१. सैयद अहमद खां, असर उस-सनादिद, १६०४, चौथा संस्करण , पृष्ठ ४८८ (उर्दू)

२२. सादिक अली खां, सरमाय: इशरत, १८६४, पृष्ठ २०४ (उर्दू भाषा में स्वयं अनुवादित)

२३. एस० बन्दोपाध्याय, सितार मार्ग, तृतीय भाग, १६५३, पृष्ठ ६३-६४ ।

२४. कानून सितार में इससे पूर्व लिखी गई मुंशी उजागरमल की पुस्तक का उल्लेख दिया गया है । अगर इस पुस्तक की कोई प्रति प्राप्त हो जाय तो इस सम्बन्ध में कुछ दृढ़तापूर्वक कहा जा सकता है ।

२५. सुदर्शनाचार्य शास्त्री, संगीत सुदर्शन, १६१६, पृष्ठ २७ ।

२६. सैयद सफदर हुसैन खां, कानून सितार, १८७०, पृष्ठ १७ ।

२७. सादिक अली खां, सरमाय: इशरत, १८६४, पृष्ठ २२२ (उर्दू भाषा में, स्वयं अनुवादित)

२८. वही, पृष्ठ २२५ ।

२६. मोहम्मद करम इमाम खां, मादन-उल-मूसीकी, १६२५ (उर्दू भाषा में, स्वयं अनुवादित)

३०. रहीम बेग नग्माए सितार, १८७६, पृष्ठ ४० ।

३१. सादिक अली खां, सरमाय: इशरत, १८६४, पृष्ठ२३६ (उर्दू भाषा में स्वयं अनुवादित)

३२. सुदर्शनाचार्य शास्त्री, संगीत सुदर्शन, १६१६, परिचय, ६१-६२, २६-२७ ।

३३. भगवत शरण शर्मा, सितार मालिका, १६५८, पृष्ठ १६१ ।

३४. सुदर्शनाचार्य शास्त्री, संगीत सुदर्शन, १६१६, पृष्ठ ४२, ४४ ।

३५. मोहम्मद करम इमाम खां, मादन-उल-मूसीकी, १९२५, पृष्ठ ४४ ।

३६. आचार्य बृहस्पति, मुसलमान और भारतीय संगीत, १९७४, पृष्ठ ३३ ।

३७. सुदर्शनाचार्य शास्त्री, संगीत सुदर्शन, पृष्ठ ५१-५२, १९१६।

३८. सैयद अहमद खां, असर अल सनादिद, १९०४, चौथा संस्करण (उर्दू भाषा में, स्वयं अनुवादित)

३९. सादिक अली खां, सरमाय: इशरत, १८९४, पृष्ठ २३४, रहीम सेन की गतमेंकई बोलों का सम्मिलित प्रयोग किया गयाहै,जिससे स्पष्ट होता है कि इनके वादन में बांए के साथ ही दांए हाथ के काम को भी बढ़ा दिया गया था ।

४०. मादन-उल-मूसीकी में रहीम सेन का उल्लेख स्पष्ट नहीं है जबकि संगीत सुदर्शन में `१८५७ के युद्ध के बाद के काल` में रहीमसेन का उल्लेख नहीं किया गया ।

४१. सुदर्शनाचार्य शास्त्री, संगीत सुदर्शन, १९१६, पृष्ठ. ११ ।

४२. वही, पृष्ठ ८९-११६ ।

४३. वही, पृष्ठ ५३ ।

४४. वही, पृष्ठ ४५ ।

४५. पुष्पा बसू, उत्तर भारतीय संगीत के बाज और घरानों का विवेचनात्मक अध्ययन, शोधकार्य, बनारस १९७१ ।

४६. भक्तशरण शर्मा, सितार मालिका, १९५८, पृष्ठ १६२ ।

४७. वी०के० रायचौधरी, भारतीय संगीत कोष, १९७५, पृष्ठ ७९ ।

४८. रामवतार `वीर`, सितार शिक्षा, १९५८, पृष्ठ १० ।

४९. जगदीशनारायण पाठक, सिद्धान्त, भाग-१, १९६७, पृष्ठ १०-११ ।

५०. श्रीपद बन्दोपाध्याय, सितार मार्ग, तृतीय भाग, १९५३, पृष्ठ ११६ ।

५१. फजल हुसैन, राग तिलक कामोद, ब्रजभूषणलाल काबरा के संग्रह से प्राप्त ।

५२. रमावल्लभ मिश्र, संगीत पत्रिका, जून १९७८, पृष्ठ ४४ ।

५३. बरकत उल्ला खां, राग भूप कल्याण, एच्एम०वी०

५४. डा० एम०जी० दिग्गवी, संगीत आलोचक, दि टाइम्स आफ इंडिया, अहमदाबाद, साक्षात्कार ।

५५. पं० जगदीशनारायण पाठक, सितार सिद्धान्त, भाग-१, १९६७, पृष्ठ ११ ।

५६. हरिश्चन्द्र श्रीवास्तव, प्रवीण प्रवाह, पृष्ठ १७३ ।

५७. वी०के० रायचौधरी, भारतीय संगीत कोष, १९७५, पृष्ठ

५८. **V.K. Aggarwala, Traditions and Trends in Indian Music 1967, Page 35.**

५९. **J.L. Matoo, Indian Music Journal october-November 1967**

६०. डी०टी० जोशी, संगीत शास्त्रकार व कलावंत्यांचा इतिहास, १९३९, पूना, पृष्ठ १४७ ।

६१. गुलाम हुसैन खां, साक्षात्कार, १९८३, अहमदाबाद ।

६२. **B. Silver, Journal of the Society for Asian Music, 1976 Page 27**

६३. बी०के० रामलालसाहू, संगीत पत्रिका, अक्टूबर १९८१, पृष्ठ ३१ ।

६४. एम० व्यास, संगीत पत्रिका, अप्रेल १९८४, पृष्ठ ६० ।

६५. **S.K. Saxena, Journal of the sangit Natak Acadami No 2, 1966 Page 101.**

६६. मकरन्द बादशाह, सितार तालीम, १९४८, निवेदन (गुजराती)

६७. हलीम जाफर खां, साक्षात्कार, दिसम्बर, १९८२ ।

६८. उस्मान खां, साक्षात्कार, पूना, जनवरी १९८३ ।

६६. रहमत खां, जोगिया/ललित, संगीत नाटक अकादमी, दिल्ली ।

७०. G. Vidyarthi, Melody through the centuries, sangit Natal Academy, 1959, Page 25-26

७१. Bhatnagar, Awadh under Wazid Ali Shah, Page-6

७२. मोहम्मद करम इमाम खां, मादन-उल-मूसीक़ी, १६२५, पृष्ठ २,४-४५ ।

७३. सरकार, पुराना लखनऊ, पृष्ठ १५३ ।

७४. Bhatnagar, Awadh under wazid Ali Shah, page 232.

७५. एस० बन्दोपाध्याय, सितार मार्ग, १६५७, पृष्ठ १०२ ।

७६. रहीम बेग, नग्मात सितार, १८७६, परिचय ।

७७. एस० बन्दोपाध्याय, सितार मार्ग, १६५७, पृष्ठ ६५ ।

७८. अन्नपूर्णा, सुरबहार, ब्रजभूषणलाल काबरा के संग्रह से प्राप्त, अहमदाबाद ।

७६. एस० बन्दोपाध्याय, सितार मार्ग, १६५७, पृष्ठ ११३ ।

८०. निखिल बैनर्जी, साक्षात्कार, कलकत्ता, फरवरी, १६८४ ।

८१. एस० बन्दोपाध्याय, संगीत पत्रिका, सितार मार्ग, १६५७, पृष्ठ १०२ ।

८२. रजनी श्रीवास्तव, संगीतपत्रिका, अगस्त १६८४, पृष्ठ ३५-४३, ६१ ।

८३. मोहम्मद करम इमाम खां, मादन-उल-मूसीक़ी, १६२५, पृष्ठ ४५ ।

८४. मोहम्मद करम इमाम खां, मादन-उल-मूसीक़ी, १६२५, पृष्ठ ४६ (उर्दू भाषा में स्वयं अनुवादित) ।

८५. Allyn Jane Miner, Hindustani Music in the early Modern Period Ph.D. thesis, Banaras 1981

८६. एस० बन्दोपाध्याय, सितार मार्ग, १६५७, पृष्ठ १०६ ।

८७. वी०के० रायचौधरी, भारतीय संगीत कोष, १६७५, पृष्ठ २०२ ।

८८. इमदाद खां, राग देस, भैरवी आदि, इमरत खां के संग्रह से प्राप्त, कलकत्ता ।

८९. सज्जन मिलाप, इटावा घराना, मनमोहन ठाकुर द्वारा इमरत खां से की गयी भेंटवार्ता, बम्बई, १९८२, इमदाद खां के जोड़ अंग के बोल है : रा - दा - दा - दा, दा रा दा दा रा दा दारा तथा द्रार-दा-द्रार-दा ।

९०. एस० बन्दोपाध्याय, सितार मार्ग, १९५७, पृष्ठ १०५ ।

९१. वही, पृष्ठ १०३ ।

९२. वही, पृष्ठ १०४ ।

९३. वहीद खां, राग खमाज/पीलू, संगीत नाटक अकादमी, दिल्ली ।

९४. विलायत खां, राग तोड़ी, ब्रजभूषणलाल काबरा के संग्रह से प्राप्त, अहमदाबाद ।

९५. भगवतशरण शर्मा, सितार मालिका, १९५८

९६. विलायत खां, राग भैरवी, ब्रजभूषणलाल काबरा के संग्रह से प्राप्त, अहमदाबाद ।

९७. एस० बन्दोपाध्याय, सितार मार्ग, १९५७, पृष्ठ ११५ ।

९८. **S.Sen, The string Instruments of North India, Ph.D. thesis Visva Bharati, 1972.**

९९. एस० बन्दोपाध्याय, सितार मार्ग, १९५७, पृष्ठ १११-११२ ।

१००. वही, पृष्ठ ९९-१०० ।

१०१. वही, पृष्ठ ११० ।

१०२. वी०के० रायचौधरी, भारतीय संगीत कोष, १९७५, पृष्ठ २०३-२०५ ।

१०३. पुष्पा बसू, उत्तर भारतीय संगीत के बाज एवं घरानों का विवेचनात्मक अध्ययन, शोधकार्य, बनारस, १९७१ ।

१०४. असद अली खां, साक्षात्कार, १९८४, दिल्ली ।

१०५. एस० बन्दोपाध्याय, सितार मार्ग, १९५७, पृष्ठ ११२ ।

१०६. मोहम्मद बख्श, राग तोड़ी मियां की राग आसा, संगीत नाटक अकादमी, दिल्ली ।

१०७. एस० बन्दोपाध्याय, सितार मार्ग, १९५७, पृष्ठ ११४-११५ ।

१०८. वही, पृष्ठ १०७ ।

१०९. वही, पृष्ठ १०८ ।

११०. वही, पृष्ठ १०५-१०६ ।

१११. वलीउल्ला खां, मिश्र पीलू/मांझ खमाज, संगीत नाटक अकादमी, दिल्ली ।

११२. एस०जी० मोहिउद्दीन, ढाका, राग बैहारी/राग देस, संगीत नाटक अकादमी, दिल्ली ।

११३. एम० शफी, फिल्म रत्न ; शुद्ध सारंग/पूरिया धनाश्री, संगीत नाटक अकादमी, दिल्ली ।